

॥ शमो सुअस्त ॥

जैनशास्त्रमाला—द्वितीय रत्नम्

अनुत्तरोपपातिकदशासूत्रम्
संस्कृतच्छाया-पदार्थान्वय-मूलार्थोपेतं
गणपतिगुणप्रकाशिका हिन्दी-भाषा-टीकासहित च

अनुवादक

जैनधर्मदिवाकर, जैनागमरत्नाकर, साहित्यरत्न, जैनमुनि
श्री श्री श्री १००८ उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज
पञ्जाबी

प्रकाशक

खज्जानचीराम जैन
जैन शास्त्रमाला कार्यालय
सैदमिहवा बाजार, लाहौर

प्रथमावृत्ति १०००]

[मूल्य लागतमात्र ०)

महावीरानन्द २४६२ विक्रमानन्द १९९३ ईसवी सन् १९३६

प्रकाशक

लाला खजानचौराम जैन,
संयोजक तथा प्रबंधक,
जैनशास्त्रमाला कार्यालय,
सेदमिठ्टा बाजार, लाहौर

पुनमुद्रणादि सर्वसधिकार प्रकाशकायत्ता

All Rights Reserved

मुद्रक

लाला खजानचौराम जैन,
मनेजर, मनोहर इलेक्ट्रिक प्रेस,
सेदमिठ्टा बाजार, लाहौर

प्रस्तावना

अनादि समार-चक्र में परिभ्रमण करती हुई आत्मा, अपने पुण्योदय से, सभी इच्छानुकूल पदार्थों की प्राप्ति कर सकती है। सासारिक सुखों को उपलब्ध कराने वाले पदार्थ भी क्षण-भंगुर होते हैं, अतः शास्त्रकारों ने उन पदार्थों से प्राप्त होने वाले सुखों को भी क्षण-भंगुर बताया है। क्योंकि जब पुद्गल द्रव्य ही क्षण-भंगुर है, तो उनसे उपलब्ध होने वाले सुख चिरस्थायी कैसे हो सकते हैं! यही कारण है कि सासारिक आत्माएँ, सासारिक सुखों के मिल जाने पर भी, आत्मिक सुखों से वंचित होकर दुखी हो रही हैं। यदि आप ससार के विशाल चित्र-पट पर विवेक-पूर्ण एवं निगाल दृष्टि डालें, तो आपको निन्दित होजाएगा कि सासारिक आत्माएँ किस प्रकार दुःखों से उत्पीड़ित होकर भयकर आर्चनाद कर रही हैं।

मिथ्यात्वोदय से इन आत्माओं में पुनः पुनः मिथ्या-सकल्प उदय होते रहते हैं। वे वास्तविक सुखों के स्थान पर क्षण-भंगुर सुखों की खोज में ही समय व्यतीत करती रहती हैं। फिर भी उन्हें शांति की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसी लिए, वर्तमान युग में, जड़वाद की ओर विशेष प्रवृत्ति होने के कारण चारों ओर से अशांति की ध्वनि सुनाई पड़ रही है। धर्म से पराङ्मुख हो जाने से मानसिक तथा शारीरिक दशा भी शोचनीय होती जा रही है। बहुत सी आत्माएँ दुःखदायी घटनाओं के घट जाने के कारण अपने अमूल्य जीवन को व्यर्थ ही नष्ट कर रही हैं। संपूर्ण सामग्री के मिल जाने पर भी उनके चित्त को शांति नहीं।

जब हम इस विषय पर गंभीरतापूर्वक विचार करते हैं, तो हम आगमों

के उपदेशों एव अनुभवों से इमी परिणाम पर पहुँचते हैं कि आत्मिक शांति के बिना बाह्य पदार्थों में कमी भी शांति-लाभ नहीं कर सकते ।

इस समय प्रत्येक आत्मा आत्मिक शांति के बिना पौंड्रलिक पदार्थों में शांति प्राप्त करने की धुन में लगी हुई है । इमी बड़ी भारी भूल के कारण वह दुःख में फँसी हुई है ।

जब हम 'मिहानलोकन न्याय' में अपने पूर्वजों के इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं, तो हमें पता चलता है कि आज कल के सुख माधनों के प्रायः न होने पर भी उनका जीवन सुखमय था । क्योंकि उनके हृदयों पर सदाचार की छाप बैठी हुई थी । वे अपने जीवन को सदाचार से विभूषित करते थे, न कि नाना प्रकार के श्रृंगारों से । वास्तव में वे आत्मिक शांति के ही डब्बुक थे । यही कारण था कि उनका जीवन सुखमय था । वे आज कल की भाँति आत्मिक शांति से रहित बाह्य शांति के जन्वेषक नहीं थे ।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि आत्मिक शांति किस प्रकार उपलब्ध हो सकती है ? इसका उत्तर यही है कि सर्वश्रेष्ठ शास्त्रों का स्वाध्याय एव पवित्र आत्माओं का समर्ग आत्मिक शांति की प्राप्ति के लिए परम आवश्यक है । स्वाध्याय से आत्म विक्रम होने लगता है और जीव, अजीव का भली भाँति निर्णय होजाता है, जिसमें कि आत्मा मय्यग्-दर्शन एव पवित्र चरित्र की आराधना में प्रयत्नशील होने लगती है । इसी आत्मिक शांति की प्राप्ति के लिए राजा, महाराजा, बड़े बड़े धनी, मानी पुरुष भी अपने पौंड्रलिक सुखों का परित्याग कर आत्मिक शांति की खोज में लग गए । क्योंकि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने, आत्मिक शांति की उपलब्धि के लिए, मुरयतया दो ही साधन प्रतिपादन किए हैं—विद्या और चरित्र । पुरुष विद्या—ज्ञान—के द्वारा प्रत्येक पदार्थ के स्वरूप को भली प्रकार जान सकता है और चरित्र के द्वारा अपने आत्मा को जलकृत कर सकता है, जिसमें कि वह निर्माण के अक्षय सुखों का आस्वादन कर सकता है ।

जनता को उक्त दोनों अमूल्य रत्नों की प्राप्ति हो, इसी आशय से प्रेरित

हीकर यह नयाँ अगशास्त्र हिंदी अनुवाद महित आपके समुदाय उपस्थित किया जा रहा है ।

द्वादशांग शास्त्रों में अनुत्तरोपपातिक शास्त्र नयाँ अग है । इस शास्त्र में उन्हीं पवित्र आत्माओं की सच्चिन्म जीवनी का दिग्दर्शन कराया गया है, जिन्होंने सामारिक सुखों को छोड़कर ज्ञानपूर्वक चारित्र (तप) की आराधना की है । किंतु आयु स्वल्प होने के कारण वे निर्माण-पद तो न प्राप्त कर सके, किंतु अनुत्तर विमानों में जा उत्पन्न हुए । और विशिष्ट अवधि ज्ञान द्वारा उनका समय आत्मान्वेषण में ही व्यतीत हो रहा है । इसी कारण वे एक जन्म और ग्रहण करके निर्माण-पद की प्राप्ति अनशय करेंगे ।

पाठक गण ! प्रस्तुत शास्त्र के तृतीय वर्ग में वर्णन किए हुए धन्य अनगार के चरित्र को ध्यानपूर्वक पढ़िएगा, जिससे कि आपको यह भली भाँति निहित हो जाएगा कि धन्यकुमार ने, किम प्रकार, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के वचनामृत का पान कर, सामारिक सुखों को छोड़कर, केवल निर्वाण-पद को ही अपना ध्येय बना, तप-द्वारा अपने शरीर को अलकृत किया था ।

पाठक गण, इस चरित्र के अध्ययन से तीन शिक्षाएँ प्राप्त कर सकते हैं:—

१—गुणी आत्माओं का गुणानुवाद करना, जैसे—धन्य अनगार के गुण श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने जनता में प्रकट किए । इस शिक्षा से प्रत्येक आत्मा को गुणी जनों का गुणानुवाद करने की शिक्षा मिलती है ।

२—महाराजा त्रेणिक ने जब धन्य अनगार के गुण श्री भगवान् के मुखारविंद से सुने, तब वह स्वयं उनके दर्शन कर उनकी स्तुति करने लगा । इस कथन से यह शिक्षा मिलती है कि यथार्थ गुणानुवाद ही होना चाहिए, न कि काल्पनिक । क्योंकि जो यथार्थ गुणानुवाद होता है, वह प्रत्येक आत्मा को गुणों की ओर आकृष्ट करता है । परंतु जो काल्पनिक गुणानुवाद होता है, वह उपहास्य हो जाता है ।

३—जिम प्रकार धन्य अनगार ने अपनी प्रतिज्ञा का उत्साहपूर्वक पालन किया, जिमसे कि वे अपने ध्येय की प्राप्ति में सफल हो सके, इसी

प्रकार प्रत्येक आत्मा को अपने ध्येय की प्राप्ति में प्रयत्न करना चाहिए। ध्येय की प्राप्ति में चाहे कैसे भी कष्टों का सामना करना पड़ जाए, किंतु अपने प्रण से रुमी भी विचलित नहीं होना चाहिए।

इस सूत्र के अध्ययन से भली भाँति उक्त तीन शिक्षाएँ मिल जाती हैं। अतः मुमुक्षु वर्ग को इस शास्त्र का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए। यद्यपि अन्य अग्रे शास्त्रों की अपेक्षा वर्तमान काल में प्रस्तुत शास्त्र की श्लोक-सरया स्वल्प है, किंतु इस शास्त्र का प्रत्येक पद शिक्षा से ओत-प्रोत है। अतः जब पाठक वर्ग उपयोगपूर्वक इसका स्वाध्याय करेंगे, तब वे स्वयं ही अनुलोम होने लगेंगे।

इस समय बहुत-सी मूर्ख आत्माएँ स्वाध्याय से शून्य एवं मदाचारियों की सगति न होने के कारण आचार से भ्रष्ट हो रही हैं। जब वे इस प्रकार आगमों का स्वाध्याय करेंगी तथा सर्वज्ञ प्रणीत शास्त्रों में आए हुए चरित्रानुवाद से सबंध रखने वाले पवित्र महर्षियों की जीवनिओं पर दृष्टिपात करेंगी, तो आशा है कि वे आत्माएँ भी 'ज्ञानक्रियाभ्या मोक्ष' के सिद्धांत पर आरुढ़ होकर निर्माण-पद की अधिकारी बन सकेंगी, जिससे कि सादि अनंत पद एवं अनंत और अक्षय सुख की प्राप्ति हो सकेगी।

आत्माराम

अनुत्तरोपपातिकदशासूत्रम्

विषय-सूची



प्रथम वर्ग

विषय	पृष्ठ
उपक्रमणिका	३
दश अध्ययनों का नामारयान	८
प्रथम अध्ययन—जालि कुमार का वर्णन	१२
शेष ,, —मयालि कुमार आदि का वर्णन	२०

द्वितीय वर्ग

तेरह अध्ययनों का नामारयान	२४
,, अध्ययन—दीर्घसेन कुमार आदि का सचित्त वर्णन	२६

तृतीय वर्ग

दश अध्ययनों का नामारयान	३२
प्रथम अध्ययन—धन्यकुमार का जन्म	३४
,, ,, ,, विवाह	३७
,, ,, ,, दीक्षा-ग्रहण	३९
,, अनगार की तपस्या	४५
,, ,, का एकादश अङ्गों का स्वाध्याय	४९

” ”	के पैर आदि का वर्णन	५१
” ”	की जह्वा ” ” ”	५३
” ”	” कटि ” ” ”	५५
” ”	” भुजा ” ” ”	५९
” ”	” ग्रीवा ” ” ”	६१
” ”	” नामिका ” ” ”	६३
” ”	के सब अङ्गों का मङ्कलित वर्णन	६७
	श्री श्रमण भगवान् के द्वारा धन्य अनगार के	
	गुणों की प्रशंसा	७१
	धन्य अनगार का शरीर-त्याग और	
	सर्वार्थ-सिद्ध विमान में उत्पत्ति	८०
	द्वितीय अध्ययन—सुनक्षत्र कुमार का वर्णन	८६
	” ” ” शरीर-त्याग, सर्वार्थ-सिद्ध	
	विमान में उत्पत्ति और श्लेष आठ अध्ययनों,	
	ऋषिदास कुमार आदि का सक्षिप्त वर्णन	९०
उपसंहार		९४

सूत्र और सूत्रांशानुक्रमणिका

प्रथम वर्ग

तेण ऋलेण पण्णत्ते	३
तते ण से सुट्ठमे कुमारे	८
जड ण भते पण्ण ?	११
एव खलुज्जप पण्णत्ते	१०-१३
एव से माणवि पण्णत्ते	२०

द्वितीय वर्ग

जति ण भते अज्झयणे	२५
जति ण भते वग्गेसु	२६-२७

तृतीय वर्ग

जति ण भते आहिंते	३०
जति ण भते होत्या	३१-३५
तते ण मा भद्दा विहरति	३७-३८
तेण ऋलेण वभयारी	३९
तते ण से धत्ते विहरति	५०-५३
तते ण से धत्ते विहरति	५४-६६
ममण भगव चिट्ठति	७९
धत्तम्म ण सोणियत्ताते	५१
धत्तम्म जघाण सोणियत्ताते	५३
धत्तम्म ऋडि पत्तम्म एवामेव०	५५-५६
धत्तम्म ऋहाण एवामेव०	५९
धत्तम्म गीवाण एवामेव०	६१
धत्तम्म नामाण भन्नति	६३-६७
धत्ते ण अणगारे चिट्ठति	६७
तेण वालेण पडिगाण	७१-७३
तण ण तम्म पन्नत्ते	८०-८१
जति ण भते जहा खन्तो	८६
तेण वालेण सिज्झणा	९०-९१
एव खन् जप पण्णत्ते	९४-९५

धन्यवाद



पाठकों के सम्मुख अब मुझे इस जैनशास्त्रमाला का द्वितीय अंक उपस्थित करते हुए बड़ा ही हर्ष होता है। इसके पूर्व 'दशाश्रुतस्करन्धसूत्र' आपकी सेवा में उपस्थित किया जा चुका है। उसमें हमें कहीं तक सफलता प्राप्त हुई है, उसका अनुभव हमारे पाठक हम से अधिक कर सकते हैं। श्री वीरप्रभु की परम कृपा से हमारा कार्य आगे भी उसी साहस और उत्साह के साथ चल रहा है। श्री श्री श्री १००८ श्री उपाध्याय आत्माराम जी महाराज ने जिम उदारता और धर्मस्नेह से इस महान् कार्य को अपने हाथों में लिया था, उमी उदारता और धर्मस्नेह से उसे निभा रहे हैं। फलस्वरूप अब 'अनुत्तरोन्वार्द दशासूत्र' आपकी सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें भी जैसा कि हमारा पूर्व से ही निश्चय था, हमने दशाश्रुतस्करन्धसूत्र के समान प्राकृतमूल, नीचे संस्कृतच्छाया, प्रत्येक शब्द का अर्थ, मूलार्थ और अन्त में निस्तृतार्थ दिया है। छपाई और शुद्धता की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। जहां तक मुझ से धन मका है, मैंने इसे सर्वाङ्गपूर्ण बनाने का यत्न किया है। अपनी ओर से कोद टुटि नहीं रखवी।

मैं अपने महायज्ञों का इतना कृतज्ञ हूँ कि मैं उन्हें धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता।

अब से पहले मैं गुरुद्वय श्री श्री श्री १००८ श्री जैनधर्मदिवानर माहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर उपाध्याय मुनि श्री आत्माराम जी महाराज का

धन्यवाद करता हूँ, जो महान् पत्रि-शास्त्रोद्धार में हमें निरन्तर महायता दे रहे हैं। ३२ शास्त्रों के अनुवाद का उदा भारी योद्धा उठाना यह उन्हीं की उन्नयनी लेखिनी का काम है। उन्होंने मुझे इम काम में पूरी तरह से महायता देने की कृपा की है। किसी भाग में भी श्रुति नहीं रखी। जिस जीवता और निपुणता में शास्त्रों के अनुवाद का कार्य चल रहा है, उसे समझने वाले ही समझते हैं। आप हमारी पञ्जाबी सम्प्रदाय की माधुममाज में विशेष प्रतिष्ठित हैं। बाल-ब्रह्मचारी और प्रसिद्ध शास्त्रमर्मज्ञ हैं, उपाध्याय आदि उपात्रियों से विभू-पित और अपनी क्रिया में परम-प्रवीण हैं। हमारी प्रभु से यही प्रार्थना है कि आप चिरायु हों, जिससे कि यह पुनीत कार्य सफलतापूर्वक चलता रहे।



श्री आ श्री १००- श्री
उपाध्याय श्री आमाराम जी महाराज
(पत्र परिचय के लिए है पुनः के लिए नहीं)

जब मुझे अपने उन अनुओं का धन्यवाद करना है, जिन्होंने इम कार्य में पूर्ण सहयोग दिया है। यदि हमें धन न मिलता तो हमारे लिए इन शास्त्रों की सन्ध तक भी मिलनी सम्भव न होती। हमारा सारा परिश्रम स्वयंसात् रह जाता। धन्य जन्म है उन पत्रिआत्माओं का, जिन्होंने हमारे मनोरथों को कार्य-रूप में परिणत किया है। उन मन महानुभावों का परिचय मैं दशाश्रुतस्मृत्यन्वय अर्थात् इम शास्त्रमाला के प्रथम अंक में 'धन्यवाद' शीर्षक लेख में दे चुका हूँ। किन्तु इतने पर भी मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ। मेरा हृदय उनका इतना आभारी है कि वह बार बार उनका धन्यवाद करने के लिये उठल रहा है। उन सज्जनों का पुनः परिचय देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ, ताकि हमारी समाज के अन्य महा-पुरुष भी उनका अनुकरण करके हमारी महायता करने के लिये प्रोत्साहित हों।

मन से पहले मैं ज्योतिष्य श्रीमान् लाला आशागम जी जैन, अर्जी-नरीम, नेकर और मालिक फर्म लाला जाशाराम जगन्नाथ, मराफ, कसूर का हृदय से वन्दना करता हूँ। आप उन्हीं ही धर्मप्रेमी और भगवद्भक्त हैं। अपने नगर में सुप्रसिद्ध और प्रतिष्ठित हैं।

इसके पश्चात् कसूरनिवासी धर्मप्रतिस्वर्गीय श्रीमान् बाबू परमानन्द जी वकील की धर्मपत्नी श्रीमती दुर्गादेवी जी का धन्यवाद करना आवश्यक समझता हूँ, जिन्होंने अपने पूज्य



श्रीमान् लाला आशागम जी

पतिदेव की स्मृति में यह दान देने की कृपा की। स्वर्गीय बाबू जी पनाम की जैनसमान के एक मुख्य नेता थे। पञ्जाब की जैन सभा के प्रसिद्ध कार्यकर्ता और उन्हीं वक्त्र के हितैषी थे। लाहौर के श्री जमर जन होस्टल की स्थापना का श्रेय आप ही को प्राप्त है। आपकी कसूर में उन्हीं प्रतिष्ठा थी। राज्य दरबार में आपको यथेष्ट सम्मान प्राप्त था। उन्हीं में आप चोटी के वकील थे। उन्हीं पतिव्रता आर सच्चे समाजहितचिन्तक थे। लुधियाना में भी हमारे दो परम



स्वर्गीय श्रीमान् बाबू परमानन्द जी



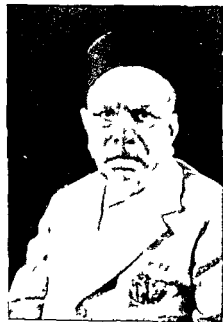
श्रीमान् लाला साहनलाल जी

मन्तलाल, लुधियाना। आप उडे धर्मात्मा है। प्रकृति उदी मरल ह। आप भी जाति के अग्रवाल ह। माधु महात्माओ की मगति में ही आपका अधिक समय व्यतीत होता है। मादगी इतनी उदी चदी है कि रहते नहीं बनता। धनिक होने पर भी मान नाममात्र को नहीं।

अन पाचरें स्थान पर में अपने पूज्य चचा श्रीयुत लाला गोपीराम जी, मालिक फर्म कन्हैयालाल वृज लाल, फर्नीचर मचण्ट ना रेकर, होशियारपुर का अतीव धन्यवाद करता हूँ। आपके पूज्य पिता का

महायक विद्यमान है। एक श्रीमान् लाला मोहनलाल जी मेनेजिङ्ग अध्यक्ष फर्म लाला मिट्टीमल नानू-रामजी जेन रेकर तथा कृष मचण्ट लुधियाना। आप उडे उन्माही, धर्म-प्रेमी और दानवीर ह। आपके हाथो धर्मोन्नति के मकदो काम चले और चल रहे है। आप जाति के अग्रवाल है और नगर में विशेष प्रतिष्ठा रखते ह। देशहित आपमें कूट कूट कर भरा हुआ है। समाज के उचे उचे से आपका विशेष प्रेम है।

दूमरे लाला मन्तलाल जी जेन, स्टैम, मालिक फर्म लाला मल्हीमल



श्रीमान् लाला मन्तलाल जी

नाम लाला कन्हैयालाल जी था ।
 आप मेरे पूज्य दादा स्वर्गीय लाला
 मेहरचन्द्र जी के भतीचे ह । आप
 गालत्रह्यचारी ह । वदे ही उदार
 और होशियारपुर की जननता के
 धनिक और प्रतिष्ठित मज्जनों म से
 एक ह । धर्म की उड़ी लगन ह ।
 सेवाभाव इतना उच्च है कि निर्धन से
 निर्धन व्यक्ति के यहाँ भी मोट छोटे
 से छोटा काम हो तो भाग कर जाते
 हैं ।

इमके जनन्तर हमार धन्यवाद के
 पात्र लाला रोचीशाह जी मालिक
 फर्म लाला कन्हैयाशाह रोचीशाह जी



श्रीमान् लाला रामीराम जा

नैन, कृपय मचण्ट, रामलपिण्डी, ह ।
 म इनकी प्रशंसा म रुहों तक लिखें ।
 आपकी शास्त्रश्रद्धा, माधुमहात्माआ
 के प्रति जनन्य भक्ति और ज्ञान
 प्रचार के लिए उदारहृदयता देखकर
 मेरा हृदय गदगद हो जाता है । आप
 वदे धनिक और अपनी निगदरी म
 मुख्य स्थान रखत हैं । वदे उच्च
 निचारा के धनी ह । महानुभूति स
 ओतप्रोत ह ।

गुरु महाराज की कृपा से हमें
 गजलपिण्डी में एक जार भी महायक
 मिले । आपका शुभ नाम लाला



श्रीमान् लाला राचीशाह जी



श्रीमान् बाला नजेशाह जा

डमी धर्मकार्य में ही अपने हृदय की
मिशालता का परिचय नहीं दिया
जपितु आपके यशस्वी हाथों से अनेक
धर्मकार्य सम्पन्न हो चुके हैं।

मात महायज्ञों का परिचय मैं ऊपर
दे चुका हूँ। आठवें स्थान पर जब
मेरी अपनी ही बारी जाती है। अपने
सम्बन्ध में मैं क्या लिखूँ। मैं मन्त्र
जैन समाज का एक तुच्छ दाम और
इस पवित्र कार्य में माहात्म्य देने
वाले उपरोक्त महापुरुषों का ऋणी
हूँ, जिन्होंने मेरे इस उद्देश्य में मेरी
हर प्रकार से सहायता की है। मेरे
मन में ऐसी शास्त्रमाला के उद्घाटन

तेजेशाह जी है। आपका राजलपिण्डी
जैन जाति में विशेष सम्मान प्राप्त
है। आप वहाँ के प्रसिद्ध वैश्य हैं।
इसके अतिरिक्त आपकी मराठी और
गुजराती की दुकान भी चलती है।
आप मुख्य व्यापारी हैं। आप बड़े
ही सुशील और कोमल प्रकृति हैं।
गम्भीर और विचारशील हैं। परम
उत्साही और शास्त्रप्रेमी हैं। दान
में बड़ी रुचि है। आपका पुण्योदय
देखिए, मन्तान भी बड़ी योग्य और
पितृभक्त हैं। उपरिलिखित राजल
पिण्डी-निग्रामी दोनों मजनों ने केवल



इस शास्त्रमाला का संशोधन और प्रबंधक
छत्रपतिजीराम जैन मनजिंदर प्रायाश्चित्त

के भाग उत्पन्न हुए। उन भागों को लेकर मैं श्री उपाध्याय जी महाराज की सेवा में उपस्थित हुआ। उनके अपिश्रान्त परिश्रम से मेरे विचार सफल हुए। किन्तु यह सब कुछ होने पर भी मैं अपने पूज्य दादा स्वर्गीय लाला मेहरचन्द्र जी के प्रति अपना हादिक श्रद्धाभास प्रकट किये बिना नहीं रह सकता, निन्होंने अपने जीवन काल में मुझे अपने मरक्षण में स्वर्णर शिचा दी, माधु महात्माओं की मङ्गति का सु-जन्म दिया, जिस कारण विचार पत्रिय रहे। मेरे पिता लाला लक्ष्मणदास जी हम चार भाइयों को अल्पवयस्क ही छोड़कर परलोक मिधार गए थे। इसलिए हमारे पालन पोषण का भार हमारे वृद्ध दादा जी पर ही पडा। उनके जीवन में एक बडा भारी महत्त्व यह था कि वह अपने भाइयों से अलग होकर कौरा वर्तन लुटिया डोरी लेकर निकले थे और अपने अनथक परिश्रम से पुस्तकों के व्यापार में लाखों की सम्पत्ति का उपार्जन किया। इतना ही नहीं, वे अपने धन के सदुपयोग का विशेष ध्यान रखते थे। गुप्तदान की ओर उनकी विशेष प्रवृत्ति थी। विचार बडे ही उच्च थे। उनके हितचिन्तक और बडे महदय थे। समाज का उन्हें पूरा अनुभव था। दिन रात हमें शिचा देते रहते थे। इतना ही नहीं, लाखों की सम्पत्ति भी हमारे लिए छोड़ गए हैं। भगवान् से प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को मदा सुख और शान्ति मिले।

जन्त में मैं सब महानुभावों का हृदय से वन्दना करता हूँ। इसके लिए आपकी आत्मा का कल्याण हो और आप सब मोक्षमार्ग पर आरूढ हो, यही हम सब की नित्य प्रति की भावना है। सब से अधिक धन्यवाद के पात्र हमारे गुरुदेव मुनि श्री उपाध्याय आत्माराम जी महाराज हैं। उनका उपकार मैं किन शब्दों में प्रकट करूँ। संक्षेप में मैं इतना ही कह देता हूँ कि मरुल जैन समाज आपकी इस अतुलनीय सेवा के लिए आपकी आभारी हैं और आजन्म आपके इस उपकार को नहीं भूलेगी।

मैत्रिय प्राप्रोडर

कर्म—मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास जैन
बंकर, पुनसेलर, पल्लिशर और प्रिंटर
मैदमिटा गज़ार, लाहौर

विनात

स्यजानचीराम जैन
मथोकर व प्रय बर
चैतशास्त्रमाला कार्यालय

पूज्यपाद आचार्यवर्य्य श्री अमरसिंह जी महाराज की पद्दावली ॥

पंचनईय सव्वगुणालंकयस्स पुञ्जसिरि अमरसिंह-
स्स सीसोमहाचाई वेरग्गमुद्दा रामवक्खस महामुणी
तपट्टे विराइओ ।

तपट्टे तेसिं लहुगुरु भाया संति मुद्दा गणिगुणालं-
कओ सत्थविसारओ पुञ्जसिरि मोतीरामो भूओ ।

तपट्टे संघहिएसी जोइसविण्णु मिच्छत्त निकंदण-
कत्ता पुञ्जसिरि सोहणलालो होत्था ।

तपट्टे जइण जाइए दसाए उद्धारए पंचालकेसरी
इय उपाधिधारए पुञ्जसिरि कासीरामो संप्पइ काले
विरायए साहिच्चमंडलस्स ठावणा इमेसिं काले भूआ ।
आसं करेमि एएसिं पहावओ सव्वकज्जं सफलं भविस्सइ ।

विक्रम सवत् १९६३ भाद्रपद शुक्ला बुधवारे ।

गुर्वावली

नायसुओ वद्धमाणो नायसुओ महामुणी ।
 लोगे तित्थयरो आसी अपच्छिमो सिवकरो ॥१॥
 सतित्थे ठविओ तेण पढमो अणुमासगो ।
 सुहम्मो गणहरो नाम तेअंसी समणच्चिओ ॥२॥
 तत्तो पवट्ठिओ गच्छो सोहम्मोनाम विस्सुओ ।
 परपराए तत्थासी सूरीचामरसिंघओ ॥३॥
 तस्स सतस्स दत्तस्स मोतीरामाभिहो मुणी ।
 होत्थ सीसोमहापन्नो गणिपयविमूसिओ ॥४॥
 तस्स पट्टे महाथेरो गणवच्छेअगो गुणी ।
 गणपति संनिओ साहू सामण्ण गुण्णमोहिओ ॥५॥
 तस्स सीसो गुरुभत्तो सो जयरामडासओ ।
 गणावच्छेअगो अत्थि समो मुत्तोच्च सासणे ॥६॥
 तस्स सीसो सच्चसधो पवट्टगपयकिओ ।
 सालिग्गामो महाभिक्खू पावयणी धुरगरो ॥७॥
 तस्सतेवासिणा एसा अप्पारामेण भिक्खुणा ।
 उवज्झाय पयकेण भासाटीका समत्थिआ ॥८॥
 दसासुयक्खंधटीकेय लोकभासासुवट्ठिआ ।
 पढंताण गुणताण वायताण पमोडणी ॥९॥

इगूणवीसा नवासीड विक्रमवासेसु निम्मिआ एसा लुधियाणा
 नामयनयरे दसासुयक्खंध टीका समत्ता ।

स्वाध्याय



आत्मा स्वाध्यायद्वारा आत्मविकास कर सकता है, परन्तु स्वाध्याय विधिपूर्वक होना चाहिए। यदि विधिशून्य स्वाध्याय किया जायगा, तो वह आत्मविकास करने में समर्थ नहीं हो सकेगा, क्योंकि विधिपूर्वक किया हुआ स्वाध्याय ही वास्तविक स्वाध्याय है।

स्वाध्याय का फल

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि स्वाध्याय करने से किम फल की प्राप्ति होती है। इसका उत्तर यही है कि—

“सज्ज्ञाएण भते । जीवे कि जणइ” “सज्ज्ञाएणं नाणा-
वरणिज्ज कम्मं खवइ”

उत्तराध्ययन अ० २९ सू० १८

अर्थात् हे भगवन् ! स्वाध्याय करने से किस फल की प्राप्ति होती है ? भगवान् कहते हैं कि—हे शिष्य ! स्वाध्याय करने से ज्ञानान्तरणीय कर्म चीण हो जाते हैं। जब ज्ञानान्तरणीय कर्म ही चीण हो गए, तो आत्मविकास स्वयमेव हो जायगा, जिससे कि आत्मा अपने स्वरूप में प्रगिष्ट हो जाने के कारण मय दुःखों से छूट जायगा। क्योंकि—

“सज्ज्ञाएवा सव्वदुक्खविमोक्खणे” उक्त० अ० २६ गा० १०

अर्थात् स्वाध्याय सब दुःखों से विमुक्त करने वाला है।

शारीरिक और मानसिक दुःख का उद्भूत अज्ञानता से ही होता है। जग अज्ञानता नष्ट होगई, तब वे दुःख भी स्वयं नष्ट हो जाते हैं। क्योंकि—

“दुःख ह्य जस्स न होइ मोहो” उक्त० अ० ३२ का० ८

अर्थात् जिसको मोह नहीं होता, मानों उमने दुःखों का भी नाश कर दिया। अतः सब प्रकार के दुःखों से छूटने के लिए स्वाध्याय अग्रय्य करना चाहिए।

स्वाध्याय किन किन ग्रन्थों का करना चाहिए ?

स्वाध्याय उन्हीं ग्रन्थों का करना चाहिए, जो सर्वज्ञप्रणीत, सत्य पदार्थों के प्रदर्शक, ऐहलौकिक और पारलौकिक शिक्षाओं से युक्त, उभयलोकों के हितोपदेष्टा और जिनके स्वाध्याय से तप, क्षमा और अहिंसा आदि तत्त्वों की प्राप्ति हो। तात्पर्य यह है कि जिनके स्वाध्याय से आत्मा ज्ञानी और चारित्र्ययुक्त एव आदर्शरूप बन सके, वे ही आगम स्वाध्याय करने योग्य हैं। उन्हीं के स्वाध्याय से आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान सकता है। किंतु प्रत्येक मतानुलम्बी अपने आगमों को सर्वज्ञप्रणीत मानता है, फिर इम बात का निर्णय कैसे हो कि अमुक आगम ही सर्वज्ञप्रणीत है, अन्य नहीं ? इमका उत्तर यही है कि आगमों की परीक्षा के लिए मध्यस्थ भाव से प्रमाण और नय के जानने की आवश्यकता है। जो आगम प्रमाण और नय से बाधित न हो सकें, वे ही प्रमाण-कोटि में माने जा सकते हैं। जैसे कि—कुछ व्यक्तियों ने अपने अपने आगमों को अपौरुषेय (ईश्वरोक्त) माना है, उनका यह कथन प्रमाण-बाधित है। क्योंकि जब ईश्वर अनाय और अशरीरी है, तो भला फिर वह वर्णात्मरूप छन्द किम प्रकार उच्चारण कर सकता है ! क्योंकि शरीर के बिना मुख नहीं होता और मुख के बिना वर्णों का उच्चारण नहीं हो सकता। अतः उनका यह कथन प्रमाण-बाधित मिद्ध हो जाता है। किन्तु जैनागम इम विषय को इम प्रकार प्रमाणपूर्ण मिद्ध करते हैं, जिसे मानने में किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती और नाही किसी प्रकार की शका ही उत्पन्न हो सकती है। उदाहरणार्थ—शब्द पौरुषेय है और अर्थ अपौरुषेय है,

अर्थात् शब्दद्वारा सर्वज्ञ आत्माओं ने उन अर्थों का वर्णन किया जो कि अपौरुषेय हैं। कल्पना कीजिए कि सर्वज्ञ आत्मा ने वर्णन किया कि 'आत्मा नित्य है' मो यह शब्द तो पौरुषय है, किन्तु शब्दों द्वारा जिस द्रव्य का वर्णन किया गया है, वह नित्य (अपौरुषेय) है। इसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य के विषय में ममम्भ लेना चाहिए। अतः सिद्ध हुआ कि सर्वज्ञप्रणीत आगमों का ही स्वाध्याय करना चाहिए।

सर्वज्ञप्रणीत आगम कौन कौन से हैं ?

वर्तमान काल में सर्वज्ञप्रणीत और सत्य पदार्थों के उपदेश करने वाले ३२ आगम ही प्रमाण-कौटि में माने जाते हैं। इन आगमों में पदार्थों का वर्णन प्रमाण और नय के आधार पर ही किया गया है। इनके अध्ययन से इन आगमों की सत्यता और इनके प्रणेता सर्वज्ञ या सर्वज्ञ कल्प स्वतः ही सिद्ध हो जाते हैं।

वर्तमान काल में ३२ आगम इस प्रकार हैं—

“से कि तं सम्मसुअ ? ज इमं अरहंतेहिं भगवंतेहि
उप्पण्ण नाणदसणधरोहि तेलुक्क निरिक्खिअ महिअ पूइएहि
तीयपडुप्पण्ण मणागय जाणएहि सव्वएणूहि सव्वदारिसीहि
पणीअ दुवालसग गणिपिडगं त जहा—आचारो १ सूयगडो २
ठाण ३ समवाओ ४ विवाहपण्णर्त्ती ५ नायाधम्मकहाओ ६
उवासगदसाओ ७ अतगडदसाओ ८ अणुत्तरोववाइय-
दसाओ ९ पणहवागरणाड १० विवागसुअ ११ दिट्ठिवाओ
१२ डच्चेअ दुवालसगं गणिपिडगं चोहस पुव्विस्स सम्मसुअ
अभिण्ण दस पुव्विस्स सम्मसुअ तेणपर भिण्णेसु भयणा
सेत सम्मसुअ । नदीसूत्र नदीसूत्र (सू० ४०)

१२ अगशास्त्र, १२ उपागशास्त्र, ४ मूलशास्त्र, ४ छेदशास्त्र और

१ आपश्यक सूत्र । किन्तु ये ३३ होते हैं । विचार करना चाहिए कि इस समय ११ अगशास्त्र विद्यमान हैं, १२ वाँ दृष्टिनादाङ्ग-शास्त्र व्यवच्छेद हुआ माना जाता है । अगशास्त्रों के नाम निम्नलिखित हैं—१ आचारांगशास्त्र, २ स्र्यग-डागशास्त्र, ३ स्थानागशास्त्र, ४ ममनायागशास्त्र, ५ व्याख्याप्रवृत्ति (भगवतीशास्त्र), ६ ज्ञाताधर्मकथागशास्त्र, ७ उपागशास्त्र, ८ अतकृद्शास्त्र, ९ अनुचर-पपातिकशास्त्र, १० प्रश्नन्याकरणशास्त्र, ११ निपाकशास्त्र, १२ दृष्टिनादागशास्त्र (जो व्यवच्छेद होगया है) ।

उपागशास्त्रों के नाम ये हैं—१ औपपातिकशास्त्र, २ राजप्रश्नीयशास्त्र, ३ जीवाभिगमशास्त्र, ४ प्रज्ञापनाशास्त्र, ५ जवृद्धीपप्रज्ञप्तिशास्त्र, ६ सूर्यप्रज्ञप्तिशास्त्र, ७ चन्द्रप्रज्ञप्तिशास्त्र, ८ निरयात्रलिङ्गाओ, ९ रूपप्रदिसियाओ, १० पुष्पफयाओ, ११ पुष्पचूलियाओ, १२ वण्हदमाओ । और चार मूल शास्त्र ये हैं—दशै-कालिकशास्त्र १, उत्तराध्ययनशास्त्र २, नदीशास्त्र ३, और अनुयोगद्वारशास्त्र ४ । चार छेदशास्त्र—व्यवहारशास्त्र १, बृहत्सल्पशास्त्र २, दशाश्रुतस्कन्धशास्त्र ३, निशीथ-शास्त्र ४, एव ३१ और ३२ वाँ आपश्यकशास्त्र । इस प्रकार ३२ आगमों की सजा वर्तमान काल में मानी जाती है । किन्तु यह सजा अर्वाचीन प्रतीत होती है । कारण यह है कि नदीमिद्वात में सब मिद्धान्तों की चार प्रकार से निम्न-लिखित सजाएँ वर्णन की गई हैं । जैसे—अगशास्त्र, उत्कालिकशास्त्र, कालिक-शास्त्र, और आपश्यकशास्त्र । जो उपागशास्त्र और मूल चार छेदशास्त्र हैं, वे सब कालिक और उत्कालिक शास्त्रों के ही अन्तर्गत लिए गये हैं । दखो—नदीमिद्धान्त—श्रुतज्ञाननिपय ।

तथा औपपातिक आदि शास्त्रों में कही पर भी यह पाठ नहीं है कि—यह उपागशास्त्र है । जैसे पाँचों अग के आगे के अगशास्त्रों के आदि में यह पाठ आता है कि, भगवान् जमूस्वामी जी कहते हैं—“हे भगवन् ! मैंने छठे अगशास्त्र के अर्थ को तो सुन लिया है, किन्तु सातवें अगशास्त्र का श्रीश्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने क्या अर्थ वर्णन किया है ?” इत्यादि । किन्तु उपागशास्त्रों में यह शैली नहीं देखी जाती, और नाही शास्त्रकर्त्ता ने उनकी उपाग सजा कही है । किन्तु केवल निरयात्रलिङ्गास्त्र के आदि में यह सूत्र आपश्य विद्यमान है । तथा च पाठ —

“तएणं से भगवं जवूजातसद्धे जावपज्जुवासमाणे एवं वयासि—उवगाण भते । समणेण जाव सपत्तेण, के अट्टे पणत्ते ? एवं खलु जवू ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं, एव उवगाणं पचवग्गा पणत्ता ? तं जहानिरयावलियाओ ? कप्पवडिसियाओ २ पुप्फियाओ ३ पुप्फचूलियाओ ४ वण्हिदसाओ ५”—इत्यादि ।

इस पाठ के आगे वर्गों के कतिपय अध्ययनो का वर्णन किया गया है । इस पाठ से यह स्फुट नहीं होमकता कि—ये उपागों के पाँच वर्ग कौन कौन से अगशास्त्र के उपाग हैं । यद्यपि पूर्वाचार्यों ने अग और उपागों की कल्पना करके अगों के साथ उपाग जोड़ दिये हैं, किन्तु यह विषय विचारणीय है । कालिक और उत्कालिक मन्ना स्थानागादि शास्त्रों में होने से बहुत प्राचीन प्रतीत होती है । किन्तु उपागादि सज्ञा भी उपादेय ही है । अथवा यह विषय विद्वानों के लिये विचारणीय है । आचार्यवर्य हेमचन्द्र जी ने अपने बनाये ‘अभिधानचिंतामणि’ नामक कोष में अगशास्त्रों का नामोल्लेख करते हुए ‘केवल उपागयुक्त अगशास्त्र है’ ऐसा कहकर विषय की पूर्ति कर दी है । किन्तु जिस प्रकार अगशास्त्रों के नामोल्लेख किए हैं, ठीक उसी प्रकार किम किम अग का कौन कौन सा उपागशास्त्र है, ऐसा नहीं लिखा है । इससे भी यह कल्पना अर्वाचीन ही सिद्ध होती है । हाँ ! यह अग्रश्य मानना पड़ेगा कि—यह कल्पना अभयदेव सूरि या मलयगिरि आदि वृत्तिकारों से पूर्व की है । क्योंकि उपागों के वृत्तिकार वृत्ति की भूमिका में उस उपाग का किम जग से संबंध है, इस प्रकार का लेख स्फुट रूप से करते हैं । अतः वृत्तिकारों के समय से भी यह कल्पना पूर्व की है, इसलिए यह कल्पना श्वेताम्बर आम्नाय में मर्मत्र प्रमाणित मानी गई है ।

विधिविरुद्ध स्वाध्याय के दोष

जिम प्रकार सातों स्वर और रागों के समय नियत हैं—जिम समय का

जो राग होता है, यदि उसी समय पर गायन किया जाय, तो वह अत्यन्त आनन्दप्रद होता है, और यदि समयविरुद्ध राग अलापा गया, तब वह सुखदाई नहीं होता, ठीक इसी प्रकार शास्त्रों के स्वाध्याय के नियम भी जानना चाहिए। और जिस प्रकार विद्यारम्भ मस्कार के पूर्व ही निनाह सस्कार और भोजन के पश्चात् स्नानादि क्रियाएँ सुखप्रद नहीं होतीं, और जिस प्रकार समय का ध्यान न रखते हुए असबद्ध भाषण करना कलह का उत्पादक माना जाता है, ठीक उसी प्रकार बिना विधि के किया हुआ स्वाध्याय भी लाभदायक नहीं होता। और जिस प्रकार लोग शरीर पर यथास्थान उच्च धारण करते हैं—यदि वे बिना विधि के तथा विपरीतांगों में धारण किए जाएँ, तो उपहाम के योग्य बन जाते हैं। ठीक इसी प्रकार स्वाध्याय के नियमों में भी जानना चाहिए। अतः सिद्ध हुआ कि विधिपूर्वक किया हुआ स्वाध्याय ही समाधिकारक माना जाता है। जिस प्रकार उक्त नियम विधिपूर्वक किए हुए ही 'प्रिय' होते हैं, ठीक उसी प्रकार स्वाध्याय भी विधिपूर्वक किया हुआ ही आत्मविकास का कारण होता है। प्रस्तुत शास्त्र की पहली दशा में उम विषय का स्फुट रूप से वर्णन किया गया है।

स्वाध्याय का समय

स्वाध्याय के लिए जो समय आगमों में बताया गया है, उसी समय स्वाध्याय करना चाहिए, किन्तु अनध्याय काल में स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियों में भी स्वाध्याय के अनध्याय काल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। क्योंकि वे लोग वेद के भी अनध्यायो का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थों का भी अनध्याय काल माना जाता है। किन्तु जैनागमों के मर्मज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्यामयुक्त होने के कारण इनका भी अनध्याय काल आगमों में वर्णित है। यथा—

“दसविधे अतलिक्खिते असज्झाडए प त—उक्कावाते
दिसिदाग्घे, गज्जिते, विज्जुते, निग्घाते, जूयते, जक्खालित्ते,
धूमिता महिता, रत उग्घाते। दसविहे ओरालित्ते, असज्जातित्ते,

प० त० अट्टिमंस, सोणिते, असुतिसामंते, सुसाणसामंते, चदोवराते, सूरुवराते, पडणे, रायवुग्गहे, उवसयस्स अतो ओरालिए सरिरगे ।”

स्थानागसूत्र स्थान १० सू० ७१४ ।

(छाया) दशविध आन्तरीचक अस्वाध्यायिक प्रज्ञप्त, तद्यथा—उल्कापातः, दिग्दाह, गर्जित, विद्युत्, निर्घातः, यूपकः, यक्षादीप्ते, धूमिता, महिता, रजउद्धातः । दशविध औदारिक अस्वाध्यायिकः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अस्थिमास-शोणितानि अशुचिसामन्त इमशानसामन्त चन्द्रोपरागः सूरुपरागः पतन राज-निग्रहः उपाश्रयस्यान्ते औदारिक शरीरक । तथा च पाठः—

“नो कप्पति निग्गथाण वा निग्गंथीण वा चउहि महा-पाडिवएहि सज्झाय करित्तए, तं जहा आसाढ पाडिवए, इन्द-महपाडिवाते कत्तिएपाडिवए, सुगिम्ह पाडिवए, णोकप्पइ निग्गंथाण वा निग्गथीण वा चउहि सज्झाहि सज्झाय करेत्तए, तं पडिमाते पछिमाते, मज्झणहे, अट्टरत्ते, कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा चाउक्काल सज्झाय करेत्तए त०—पुव्वणहे अव-रणहे पओसे पच्चुसे ।”

स्थानागसूत्र स्थान ४ उद्देश २ सू० २८५

(छाया) नो कल्पते निर्ग्रन्थाना वा निर्ग्रन्थीना वा चतुर्भिः महाप्राति-पद्भिः स्वाध्याय कर्तुम् । तद्यथा—आपादीप्रतिपदः, इन्द्रप्रतिपदः, कार्तिकप्रति-पदः, सुग्रीष्मप्रतिपदः ? नो कल्पते निर्ग्रन्थाना निर्ग्रन्थीना चतुर्भिः सन्ध्याभिः स्वाध्याय कर्तुम् । प्रथमाया पश्चिमाया मध्याह्ने अर्धरात्रौ । कल्पते निर्ग्रन्थाना निर्ग्रन्थीना चतुष्काले स्वाध्याय कर्तुम् । तद्यथा—पूर्वाह्ने, अपराह्ने, प्रदोषे, प्रत्युषे ।

भानार्थ—आकाश से सत्रध रखने वाले कारणों से आकाश सत्रधी दश प्रकार से अस्वाध्याय वर्णन किए गए हैं । जैसे उल्कापात (तारापतन), यदि महत् तारापतन हुआ हो, तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्रों का स्वाध्याय नहीं करना चाहिए १ । जन तक दिशा रक्त वर्ण की दिखाई पड़ती रहे, तब भी शास्त्रीय

स्वाध्याय नहीं करना चाहिए २ । इसी प्रकार आगे भी समझ लेना चाहिए । दो प्रहर पर्यन्त बादल गरजने पर ३ । एक प्रहर पर्यन्त विजली चमकने पर ४ । दो प्रहर पर्यन्त कड़कने पर ५, अर्थात् बादल के होने या न होने पर आकाश में घोर गर्जना हो, शुक्लपक्ष में तीन दिन पर्यन्त, बालचन्द्र होने पर तीन दिन पर्यन्त । प्रतिपदा, द्वितीया और तृतीया की रात्रि को एक एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करना चाहिए ६ । आकाश में जब तक यचाकार दीखता रहे ७ । धूमिका श्वेत ८ । धूमिका कृष्ण ९ । माघ आदि महीनों में धुध जब तक रहे तब तक स्वाध्याय न करना चाहिए, विशेषतया वृष्टि होने पर १० । उक्त कारणों के उपस्थित होने पर शास्त्रों का स्वाध्याय नहीं करना चाहिए । किन्तु गर्जना और विद्युत् का अस्वाध्याय चातुर्मास्य में न मानना चाहिए । क्योंकि वह गलित और विद्युत् कार्य ऋतु स्वभाव से ही प्रायः होता है । अत आर्द्रार्क और स्वाँति अर्क तक अस्वाध्याय नहीं माना जाता । दश प्रकार औदारिक शरीर से मबध रखने वाले कारणों के उपस्थित हो जाने पर भी अस्वाध्याय हो जाता है । जैसे हड्डी के दिग्बाई देने पर १ । मास के समीप होने पर २ । रुधिर के समीप होने पर ३ । वृत्तिकारों ने ६० हाथ के आमपाम उक्त चीजें पड़ी होने पर अस्वाध्याय माना है । अशुचि (मलमूत्रादि) के समीप होने पर ४ । श्मशान के पास होने पर ५ । चन्द्रग्रहण के होने पर ८-१२-१६ प्रहर पर्यन्त ६ । सूर्यग्रहण होने पर ८-१२-१६ प्रहर पर्यन्त ७ । किसी बड़े राजा आदि अधिकारी की मृत्यु हो जाने पर—उनके सस्कार पर्यन्त अथवा अधिकार प्राप्त होने तक शनैः शनैः पढ़ना चाहिए ८ । राजाओं के युद्ध स्थान पर ९ । उपाध्य के भीतर पचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर—जैसे किसी ने कबूतर या चूहे को मार दिया हो तथा १०० हाथ के आमपाम मनुष्य आदि का शन पड़ा हो, तब भी स्वाध्याय न करना चाहिए १०। एव २०॥

चार महाप्रतिपदाओं में भी स्वाध्याय न करना चाहिए । जैसे आषाढ़ शुक्ला पौर्णमासी और श्रावण प्रतिपदा २, आश्विन शुक्ला पौर्णमासी तथा कार्तिक प्रतिपदा ४, कार्तिक शुक्ला पौर्णमासी तथा मार्गशीर्ष प्रतिपदा ६, चैत्र शुक्ला पौर्णमासी और वैशाख प्रतिपदा ८ । और सूर्योदय से एक घड़ी पूर्व तथा एक घड़ी पश्चात् एव सूर्यास्त से एक घड़ी पूर्व तथा एक घड़ी पश्चात्,

मध्याह्न के समय तथा अर्धरात्रि के समय भी पूर्ववत् स्वाध्याय नहीं करना चाहिए। किन्तु दिन के प्रथम प्रहर और पश्चिम प्रहर तथा रात्रि के प्रथम प्रहर और पिछले प्रहर में अस्वाध्याय काल को छोड़कर अवश्य स्वाध्याय करना चाहिए। इस प्रकार ३२ प्रकार के अस्वाध्याय काल को छोड़कर स्वाध्याय करना चाहिए। तथा निशीथ सूत्र के १९ वें उद्देश में यह पाठ है—

“जे भिक्खू चउसु महापडिवएसु सज्झायं करेइ करंतं वा साइज्जइ, त जहा सुगिम्हिए पाडिवाए, आसाढी पाडिवए, भद्दवए पाडिवए, कत्तिए पाडिवए।”

इन्का अर्थ भी पूर्ववत् है, किन्तु इस पाठ में भाद्रपद भी ग्रहण किया गया है। सो भाद्रशुक्ला पौर्णमासी और आश्विन कृष्णा प्रतिपदा, इस प्रकार दो दिनों की वृद्धि करने से ३४ अस्वाध्याय काल हो जाते हैं। अतः इनको छोड़कर ही स्वाध्याय करना चाहिए। व्यवहार सूत्र के सातवें उद्देश में स्वाध्याय और अस्वाध्याय काल के विषय में वर्णन करते हुए उत्सर्ग और अपवादमार्ग दोनों का ही अवलम्बन किया गया है। जैसे—

“नो कप्पति निग्गथीण वा निग्गथाण वा वित्तिकिट्ठाए काले सज्झाय उद्दिसित्तए वा करित्तए ॥१४॥ कप्पति निग्गंथीण वित्तिकिट्ठाए काले सज्झाय उद्दिसित्तए वा करित्तए वा निग्गंथणिस्साए ॥१५॥ नो कप्पति निग्गथाण वा निग्गंथीण वा असज्झाय सज्झाय करित्तए ॥१६॥ कप्पति निग्गथाण वा निग्गंथीण वा सज्झाइय सज्झायं करित्तए ॥१७॥ नो कप्पति निग्गंथाण वा निग्गथीण वा अप्पणो असज्झाइय करित्तए कप्पति ण अप्पणमन्नस्स वायण दलित्तए ॥१८॥”

इन सूत्रों का भाग्यार्थ केवल इतना ही है कि—साधु या साध्वियों को अकाल में स्वाध्याय न करना चाहिए। किन्तु काल में ही स्वाध्याय करना

स्वाध्याय नहीं करना चाहिए २ । इसी प्रकार आगे भी समझ लेना चाहिए । दो प्रहर पर्यन्त बादल गरजने पर ३ । एक प्रहर पर्यन्त विजली चमकने पर ४ । दो प्रहर पर्यन्त कड़कने पर ५, अर्थात् बादल के होने या न होने पर आकाश में घोर गर्जना हो, शुक्लपत्र में तीन दिन पर्यन्त, चालचन्द्र होने पर तीन दिन पर्यन्त । प्रतिपदा, द्वितीया और तृतीया की रात्रि को एक एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करना चाहिए ६ । आकाश में जब तक यन्त्राकार दीखता रहे ७ । धूमिका श्वेत ८ । धूमिका कृष्ण ९ । माघ आदि महीनों में धुध जब तक रहे तब तक स्वाध्याय न करना चाहिए, विशेषतया घृष्टि होने पर १० । उक्त कारणों के उपस्थित होने पर शास्त्रों का स्वाध्याय नहीं करना चाहिए । किन्तु गर्जना और विद्युत् का अस्वाध्याय चातुर्मास्य में न मानना चाहिए । क्योंकि वह गर्जित और विद्युत् कार्य ऋतु स्वभाज से ही प्राय होता है । अतः आर्द्रार्क और स्वांति अर्क तक अस्वाध्याय नहीं माना जाता । दश प्रकार औदारिक शरीर से मन्त्र रसने वाले कारणों के उपस्थित हो जाने पर भी अस्वाध्याय हो जाता है । जैसे हड्डी के दिखाई देने पर १ । मास के समीप होने पर २ । रुधिर के समीप होने पर ३ । वृत्तिकारों ने ६० हाथ के आमपाम उक्त चीजें पड़ी होने पर अस्वाध्याय माना है । अशुचि (मलमूत्रादि) के समीप होने पर ४ । श्मशान के पाम होने पर ५ । चन्द्रग्रहण के होने पर ८-१२-१६ प्रहर पर्यन्त ६ । सूर्यग्रहण होने पर ८-१२-१६ प्रहर पर्यन्त ७ । किमी बड़े राजा आदि अधिकारी की मृत्यु हो जाने पर—उनके मस्कार पर्यन्त अथवा अधिकार प्राप्त होने तक शनैः शनैः पठना चाहिए ८ । राजाओं के युद्ध स्थान पर ९ । उपाश्रय के भीतर पचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर—जैसे किमी ने कत्रुतर या चूहे को मार दिया हो तथा १०० हाथ के आमपाम मनुष्य आदि का शय पडा हो, तब भी स्वाध्याय न करना चाहिए १०। एव २०॥

चार महाप्रतिपदाओं में भी स्वाध्याय न करना चाहिए । जैसे आपाठ शुक्ला पौर्णमासी और श्रावण प्रतिपदा २, आश्विन शुक्ला पौर्णमासी तथा कार्तिक प्रतिपदा ४, कार्तिक शुक्ला पौर्णमासी तथा मार्गशीर्ष प्रतिपदा ६, चैत्र शुक्ला पौर्णमासी और वैशाख प्रतिपदा ८ । और सूर्योदय से एक घड़ी पूर्व तथा एक घड़ी पश्चात् एव सूर्यास्त से एक घड़ी पूर्व तथा एक घड़ी पश्चात्,

मध्याह्न के समय तथा अर्धरात्रि के समय भी पूर्ववत् स्वाध्याय नहीं करना चाहिए। किन्तु दिन के प्रथम प्रहर और पश्चिम प्रहर तथा रात्रि के प्रथम प्रहर और पिछले प्रहर में अस्वाध्याय काल को छोड़कर अवश्य स्वाध्याय करना चाहिए। इस प्रकार ३२ प्रकार के अस्वाध्याय काल को छोड़कर स्वाध्याय करना चाहिए। तथा निशीथ सूत्र के १९ वें उद्देश में यह पाठ है—

“जे भिक्खू चउसु महापडिवएसु सज्झाय करेइ करंत वा साइज्जइ, त जहा सुगिम्हिए पाडिवाए, आसाढी पाडिवए, भइवए पाडिवए, कत्तिए पाडिवए।”

इनका अर्थ भी पूर्ववत् है, किन्तु इस पाठ में भाद्रपद भी ग्रहण किया गया है। सो भाद्रशुक्ला पौर्णमासी और आश्विन कृष्णा प्रतिपदा, इस प्रकार दो दिनों की वृद्धि करने से ३४ अस्वाध्याय काल हो जाते हैं। अतः इनको छोड़कर ही स्वाध्याय करना चाहिए। व्यवहार सूत्र के सातवें उद्देश में स्वाध्याय और अस्वाध्याय काल के विषय में वर्णन करते हुए उत्सर्ग और अपवादमार्ग दोनों का ही अवलम्बन किया गया है। जैसे—

“नो कप्पति निग्गथीण वा निग्गथाण वा वित्तिकिट्ठाए काले सज्झायं उद्दिसित्तए वा करित्तए ॥१४॥ कप्पति निग्गंथीण वित्तिकिट्ठाए काले सज्झाय उद्दिसित्तए वा करित्तए वा निग्गथणिस्साए ॥१५॥ नो कप्पति निग्गथाण वा निग्गंथीण वा असज्झाय सज्झायं करित्तए ॥१६॥ कप्पति निग्गंथाण वा निग्गथीण वा सज्झाइय सज्झाय करित्तए ॥१७॥ नो कप्पति निग्गथाण वा निग्गथीण वा अप्पणो असज्झाइय करित्तए कप्पति ण अप्पणमन्नस्स वायणं दलित्तए ॥१८॥”

इन सूत्रों का भावार्थ केवल इतना ही है कि—साधु या साध्वियों को अकाल में स्वाध्याय न करना चाहिए। किन्तु काल में ही स्वाध्याय करना

चाहिए । यदि परस्पर वाचना चलती हो, तो वाचना की क्रिया कर सकते हैं, अर्थात् वाचना अकाल में भी दे ले सकते हैं । और यदि अपने शरीर से रुधिर आदि बहता हो, तब भी स्वाध्याय नहीं कर सकते, परन्तु उस स्थान को ठीक बाँधकर यदि रून आदि बाहर न बहते हों, तो परस्पर वाचना दे ले सकते हैं । इस प्रकार शुद्धिपूर्वक स्वाध्याय करने में प्रयत्नशील होना चाहिए ।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि—अस्वाध्याय मूल सूत्र का होता है या अनुप्रेक्षादि का भी ? इसका उत्तर यही है कि—ठाण्णाग सूत्र के वृत्तिकार अभयदेव स्वरि चार महा प्रतिपदाओं की वृत्ति करते समय प्रथम ही यह लिखते हैं—

“स्वाध्यायो नन्द्यादिसूत्रविषयो वाचनादि अनुप्रेक्षा तु न निषिध्यते”

इस कथन से सिद्ध हुआ कि केवल सहिता-मात्र का अस्वाध्याय है, अनुप्रेक्षा आदि का नहीं ।

अस्वाध्याय काल में स्वाध्याय करने से हानि

अस्वाध्याय काल में स्वाध्याय करने से यही हानि है कि—शास्त्र के देवाधिष्ठित एव देव वाणी होने के कारण अशुद्धिपूर्वक पढ़ने से कोई क्षुद्र देव पढ़ने वाले को छल ले या उसे दुःख द देवे ! (एतेषु स्वाध्याय कुर्वता क्षुद्रदेवता छलन करोति इति वृत्तिकार) जिससे कि लोगों में अत्यन्त अपवाद हो जावे । तथा आत्मविराधना और सयमविराधना के होने की भी संभावना की जा सकती है । अथवा—

“सुय णाणमि अभत्ती लोगविरुद्ध पमत्त छलणा य ।

विज्जा साहणवे गुन्न धम्मया एव मा कुणसु ॥१॥”

“श्रुतज्ञानेऽभक्ति लोकरिद्धता प्रमत्तछलना च ।

विद्यामाधनवैगुण्यधर्मता इति मा कुरु ॥”

अर्थात्—विद्यासाधन में असफलता, इत्यादि कारण जानकर, हे शिष्य !

अकाल में स्वाध्याय न करना चाहिए। अतएव सिद्ध हुआ कि अकाल में स्वाध्याय करना वर्जित है। जैसे जो वृक्ष अपनी ऋतु आने पर ही फलते और फूलते हैं, वे जनता में समाधि के उत्पन्न करने वाले माने जाते हैं। किन्तु जो वृक्ष अकाल में फलते और फूलते हैं, वे देश में दुर्भिक्ष, मरी, और राज्य-निग्रह (कलह) आदि के उत्पन्न करने वाले माने जाते हैं। इसी प्रकार स्वाध्याय के काल, अकाल नियम में भी जानना चाहिए। कारण यह है कि प्रत्येक कार्य निधिपूर्वक किया हुआ ही मफल होता है। जैसे समय पर सेवन की हुई ओषधि रोग की निवृत्ति और बल की वृद्धि करती है, ठीक इसी प्रकार भक्तिपूर्वक और स्वाध्यायकाल में ही किया हुआ स्वाध्याय कर्मक्षय और शान्ति की प्राप्ति कराता है। अत —

“उद्देशोपासगस्सनत्थि”

इस वाक्य का स्मरण कर इस विषय को यहीं पर समाप्त किया जाता है। अर्थात् बुद्धिमान् को उपदेश की आवश्यकता नहीं। वह स्वयं ही अपने कृत्यों को समझता है। इसलिए श्रुश्रु जनों को उचित है कि वे शास्त्रीय स्वाध्याय से अपने जीवन को परित्र बनाकर मोक्ष के अधिकारी बनें। क्योंकि शास्त्र का वाक्य है :—

“दोहि ठाणेहि अणगारे संपन्ने अणादीय अणवयग्ग दीहमद्ध चाउरतससारकतारं वीतिवतेज्जा, तं जहा विज्जाए चेव चरणेण चेव ।”

स्थानागसूत्र, स्थान २ उद्देश १ सूत्र ६३

दो कारणों से संयुक्त भिक्षु अनादि अनन्त दीर्घ मार्ग वाले चतुर्गति रूप ससाररूपी कान्तार से पार हो जाते हैं, जैसे कि निष्ठा और आचरण से। इसलिए हमें चाहिए कि देश और धर्म का अभ्युदय करते हुए अनेक भव्य प्राणियों को मोक्ष का अधिकारी बनायें, जिससे जनता में सुख और शांति का संचार हो। इत्यल विद्वद्वर्येषु ।

श्रीः

अनुत्तरोपपातिकदशासूत्रम्

संस्कृतच्छाया-पदार्थान्वय-मूलार्थोपेतं

तपोगुणप्रकाशिकाहिन्दीभाषाटीकासहितं च

प्रथमो वर्गः



तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे अज्ज-सुह-
म्मस्स समोसरणं । परिसा निग्गया जाव जंवू पज्जु-
वासति एवं वयासी जड णं भंते । समणेणं जाव
संपत्तेणं अट्टमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अयमट्टे पण्णत्ते
नवमस्स णं भंते अंगस्स अणुत्तरोववाडयदसाणं जाव
संपत्तेणं के अट्टे पण्णत्ते ?

तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहे आर्य-सुधर्मस्य
समवशरणम् । परिपन्निर्गता यावज्जम्बू पथ्युपासति एव-
मवादीत् “यदि भदन्त ! श्रमणेन यावत्संप्राप्तेनाष्टमस्याङ्गस्या-
न्तकृद्दशानामयमर्थं प्रज्ञप्तं, नवमस्य नु भदन्त ! अङ्गस्यानु-
त्तरोपपातिकदशानां यावत्संप्राप्तेन कोऽर्थं प्रज्ञप्तं ।

पदार्थान्वय — तेण—उस कालेण—काल और तेण—उस समएण—समय मे
रायगिहे—राजगृह नगर मे अज्ज-सुहम्मम्म आर्य सुधर्म्मा ममोसरण—विराजमान

हुए परिसा-परिपद् निगया-उनकी धर्म-कथा सुनने के लिये नगर से निकली जाव-यावत्-और कथा सुनकर फिर नगर को वापिस चली गई । इस के अनन्तर जन्-जम्बू स्वामी पञ्जुवामति-अन्धी तरह सेवा करता हुआ एव-इम प्रकार व्यासी-कफने लगा ए-वाक्यालङ्कार के लिये है भते !-हे भगवन् ! जड-यदि सपत्तेण-मोक्ष को प्राप्त हुए जाव-और अन्य सब गुणों से परिपूर्ण समणेण-श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अट्टमस्म-आठवें अगस्स-अद्द अतगडन्साण-अन्त-कृद्-दशा का अयमट्ठे-यह अर्थ पएणत्ते-प्रतिपादन किया है तो फिर भते !-हे भगवन् ! नवमस्म-नौवें अगस्म-अग अणुत्तरोववाइयदमाण-अनुत्तरोपपातिक दशा का जाव-'नमो त्थु ण' के गुणों से युक्त और सपत्तेण-मोक्ष को प्राप्त हुए श्री भगवान् ने के-कौन-सा अट्ठे-अर्थ पएणत्ते-प्रतिपादन किया है ?

मूलार्थ—उस काल और उम समय में एक राजगृह नगर था । (उसके बाहर गुणशिलक नाम के चैत्य में) श्रार्य सुधर्मा विराजमान हुए । (यह सुनकर) नगर की परिपद् (उनके पास धर्म कथा सुनने के लिये) गई (और धर्म सुनकर नगर को वापिस चली गई) । जम्बू स्वामी अन्धी प्रकार उनकी सेवा करते हुए इस प्रकार कहने लगे "हे भगवन् ! यदि मोक्ष को प्राप्त हुए श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने आठवें अद्द, अन्तकृद्-दशा का यह अर्थ प्रतिपादन किया है तो हे भगवन् ! नौवें अद्द, अनुत्तरोपपातिक-दशा का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ।

टीका—सूत्रों के मरया उद्द प्रम म अद्दकृन् सूत्र आठवा और अनुत्तरोपपातिकसूत्र नौवा अद्द है । अत अद्दकृन्-सूत्र के अनन्तर ही इसका आना सिद्ध है । आठवें अद्द, अद्दकृन्-सूत्र में उन जीवों का वर्णन किया है, जो मूक केवली हुए हैं अर्थात् जिन्होंने स्वयं तो केवल ज्ञान की प्राप्ति की किन्तु आयु के क्षीण होने के कारण दूसरी भव्य आत्माओं पर अपने उस ज्ञान को प्रकाश नहीं कर सके । जैसे गजसुकुमार आदि । इस नौवें अद्द में उन व्यक्तियों के जीवन का दिग्दर्शन कराया गया है, जो अपनी मनुष्य जीवन की लीला को समाप्त कर पाच अनुत्तरोपपातिक विमानों में उत्पन्न हुए हैं ।

इस सूत्र की उत्थानिका श्री जम्बू स्वामी से वर्णन की गई है । जब श्री

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी मोक्ष को प्राप्त हो चुके तत्र जन्मू स्वामी के चित्त में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने किस प्रकार उक्त सूत्र का अर्थ वर्णन किया है । उनकी इस जिज्ञासा को देखकर श्री सुधर्मा स्वामी निम्न लिखित रीति से इस सूत्र का विषय वर्णन करते हैं ।

इस समय जो एकादश अङ्ग-सूत्र हैं, वे सब श्री सुधर्मा स्वामी की वाचना के ही कहे जाते हैं । ऐसा न मानने से कई एक आपत्तियाँ उपस्थित हो जाती हैं । जैसे—अङ्ग-सूत्र में इस प्रकार के पाठ मिलते हैं कि धन्ना अनगार ने एकादश अङ्गों का अध्ययन किया था । किन्तु इस समय जो अनुत्तरोपपातिक-सूत्र है, उसमें मुख्य रूप से धन्ना अनगार का ही शिक्षा अधिकार पाया जाता है । ऐसी अवस्था में यह शङ्का बिना समाधान के ही रह जाती है कि उन्होंने नौवें वौन से अङ्ग का अध्ययन किया होगा । क्योंकि प्रस्तुत नौवें अङ्ग में तो धन्ना अनगार का पाण्डोपगमन से अनशन पर्यन्त और अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने तक का सब वर्णन दिया गया है । अतः यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि यह सब सुधर्मा-चार्य की ही वाचना है और वह भी श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण-पद-प्राप्ति के अनन्तर ही की गई है ।

इस सूत्र की हस्त लिखित प्रतियों में निम्न-लिखित पाठ-भेद भी मिलते हैं —

“तेण कालेण तेण ममण्ण रायगिहे नगरे होत्था । तस्स ण रायगिहे नाम नयरस्स सेणिए नाम गया होत्था वण्णओ चेलणाए देवी । तत्थ ण रायगिहे नाम नयरे महिया उत्तर-पुरत्थिमे दिसा-भाए गुणसेलए नाम चेइए होत्था । तेण कालेण तेण ममण्ण रायगिहे नाम नयरे अज्ज-सुहम्मै नाम थेरे जाव गुणसेलए नाम चेइए तेणैव समोमढे परिमा निग्गया धम्मो कहिओ परिसा पडिगया ।”

“तेण कालेण तेण समण्ण जसु जाव पज्जुवाममाणे एव वयासी”

इनमें से पहला पाठ किसी ग्रन्थ से ज्यों-का-त्यों उद्धृत किया हुआ प्रतीत होता है । क्योंकि इस सूत्र की रचना तो श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण के अनन्तर ही हुई है और श्रेणिक महाराज श्री भगवान् के विश्राम होते ही पञ्चव (मृत्यु) को प्राप्त हो चुके थे । इसलिए असङ्गत होने के कारण यह पाठ निर्मूल है । इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए ‘शास्त्रोद्धार-समिति ने एक प्रायः

शुद्ध प्रति मुद्रापित भी है। इस प्रति में जो मूल सूत्र हैं, वे ठीक प्रतीत होते हैं। इस में सूत्रों के साथ-साथ श्री अभयदेव सूरि कृत सस्कृत विवरण भी है, किन्तु यह बहुत ही सक्षिप्त है। अनुत्तरोपपातिक-दशा शब्द की व्याख्या विवरणकार इस प्रकार करते हैं —

“अथानुत्तरोपपातिकदशासु किञ्चिद्व्याख्यायते—तत्रानुत्तरेषु—सर्वोत्तमेषु विमानविशेषेषु, उपपात —जन्म, अनुत्तरोपपात, स विद्यते येषां तेऽनुत्तरोपपातिकास्तत्प्रतिपादिका दशा —दशाध्ययनप्रतिपदप्रथममर्गयोगादशा —ग्रन्थविशेषोऽनुत्तरोपपातिक-दशास्तासां च सम्बन्धसूत्र तद्व्याख्यान च ज्ञाताधर्म-कथा-प्रथमाध्ययनादवसेयम् । शेष सूत्रमपि कण्ठ्यम्” । इसी प्रकार अन्य कुछ एक स्थलों का ही विवरण किया गया है। उनमें धन्ना अनगर की उपमा के स्थल पर विशेष है। शेष सूत्रों को सरल जान कर बिना किसी विवरण किये छोड़ दिया गया है। किन्तु ये सूत्र अर्थ की दृष्टि से सुगम होने पर भी ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्त्व के हैं।

पाठकों की सुविधा के लिए इस सूत्र का स्पष्ट और सुगम अर्थ नीचे दिया जाता है —

चतुर्थ आरे के उस समय जब श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी निर्वाण-पद प्राप्त कर चुके थे, राजगृह नाम का एक नगर था। उस नगर के बाहर एक गुणशैलक नाम चैत्य (उद्यान) था। एक समय उस उद्यान में आर्य सुधर्मा स्वामी पधारे। यह सुनकर उस नगर के लोग उनके मनोहर व्याख्यान सुनने के लिए उन की सेवा में उपस्थित हुए। जब उनका व्याख्यान हो चुका, तब जनता प्रसन्न चित्त से नगर को वापस चली गई। इसके अनन्तर आर्य जम्बू स्वामी ने भगवान् सुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया “हे भगवन् ! श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी मोक्ष को प्राप्त हो गये हैं। यह हम ने आप के मुखारविन्द से सुन लिया है कि उन्होंने आठों अङ्ग ‘अङ्गकृत-सूत्र’ का अमुक अर्थ प्रतिपादन किया है। अब मेरी निज्ञासा नौवें अङ्ग के अर्थ जानने की है। कृपा करके वह भी वर्णन कीजिए।” यह सुनकर श्री सुधर्मा स्वामी जी ने इस से उक्त नौवें अङ्ग का अर्थ कहना प्रारम्भ किया है,—

इस सूत्र में “तेण कालेण तेण समण्ण” का “तस्मिन् काले तस्मिन् समये” सप्तम्यन्त अनुवाद किया गया है। किन्तु यह दोषाधायक नहीं है। क्योंकि अर्द्ध-

मागधी भाषा में सप्तमी के स्थान पर प्रायः तृतीया का प्रयोग देखा गया है । किसी किसी आचार्य का मत है कि यहाँ 'ण' वाक्यालङ्कार अर्थ में है और 'ते' प्रथमा का बहुवचन है, जो यहाँ अधिकरण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । किन्तु पहले पक्ष का बहुत से आचार्य समर्थन करते हैं । जैसे —सप्तम्या द्वितीया ॥८।३।१३७॥

इस सूत्र की वृत्ति में आचार्य हेमचन्द्र जी लिखते हैं —“सप्तम्या स्थाने क्वचिद् द्वितीया भवति । विञ्जु ज्ञोय भरइ रत्ति । आपें तृतीयापि दृश्यते । तेण कालेण, तेण समण्ण—तस्मिन् काले, तस्मिन् समये इत्यर्थ । प्रथमाया अपि द्वितीया दृश्यते । चउवीस पि जिणउरा—चतुर्विंशतिरपि जिनवरा इत्यर्थ ।”

जैन सिद्धान्तकौमुदी (अर्द्धमागधी) व्याकरण के कर्ता पण्डित शतावधानि रत्नचन्द्र जी लिखते हैं —आधारेऽपि ॥१२।१९॥

क्वचिदधिकरणेऽपि वाच्ये तृतीया स्यात् । तेण कालेण तेण समण्ण । जेणामेव सेणिए राया तेणामेव—यस्मिन्नेव तस्मिन्नेवेत्यर्थ । “मञ्जेणय गभीरे” “रायवर कण्णाहिं सद्धि एगदिवसेण पाणिं गिण्हाविसु ।” इत्यादि दृष्टान्त और व्याकरण के नियमों से सिद्ध हो जाता है कि सप्तमी के अर्थ में तृतीया का प्रयोग शास्त्र-विरुद्ध नहीं है, अपितु शास्त्र-सम्मत ही है ।

इस सूत्र में राजगृह नगर का केवल नाम ही दिया गया है । इसका विशेष वर्णन औपपातिक-सूत्र में आता है । जो व्यक्ति इसके जानने की इच्छा रखते हों, उनको इसके लिये औपपातिक-सूत्र ही देखना चाहिए ।

यहाँ पर पाठकों को सुधर्मा स्वामी के विषय में भी कुछ बताना देना ठीक प्रतीत होता है । आप चतुर्दश पूर्वा के पाठी और चार ज्ञानों को धारण करने वाले थे । यद्यपि आप स्वविर-गुणों से पूर्ण 'जिन' तो नहीं थे तथापि 'जिन' के सदृश यथार्थ-वक्ता अवश्य थे । आप स्व-समय (अपने मत) और पर-समय (दुमरों के मत) के पूर्ण ज्ञाता थे । आप श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पट्ट को सुशोभित करते थे । यहाँ पर उनके विषय में इतना ही लिखना पर्याप्त होगा । जो उनके विषय में विशेष जानना चाहते हों, उनको 'ज्ञाता-सूत्र' से जानना चाहिए ।

जन्मू स्वामी के उक्त जिज्ञासा-रूप प्रश्न को सुन कर सुधर्मा स्वामी इस प्रकार कहने लगे —

तते णं से सुहम्मे अणगारे जंबुं अणगारं एवं
 वयासीः—एवं खलु जम्बू । समणेणं जाव संपत्तेणं
 नवमस्स अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं तिण्णि वग्गा
 पण्णत्ता । जति णं भंते । समणेणं जाव संपत्तेणं नवमस्स
 अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं तओ वग्गा पण्णत्ता, पढ-
 मस्स णं भंते । वग्गस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं कइ
 अज्झयणा पण्णत्ता ? एवं खलु जंबू । समणेणं जाव
 संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस
 अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—(१) जालि (२) मयालि
 (३) उवयालि (४) पुरीससेणे य (५) वारिसेणे य (६)
 दीहदंते य (७) लट्टदंते य (८) वेहल्ले (९) वेहासे (१०)
 अभये ति य कुमारे ।

तत स सुधम्मोऽनगारो जम्बुमनगारमेवमवादीत् “एव
 खलु जम्बु । श्रमणेन यावत्सप्राप्तेन नवमस्याङ्गस्य, अनुत्तरोपपा-
 तिकदशाना, त्रयो वर्गा प्रज्ञप्ता” । “यदि नु भदन्त ! श्रमणेन
 यावत्सप्राप्तेन नवमस्याङ्गस्य, अनुत्तरोपपातिक-दशानां, त्रयो
 वर्गा प्रज्ञप्ता, प्रथमस्य नु, भदन्त !, वर्गस्य, अनुत्तरोपपातिक-
 दशाना, कत्यध्ययनानि प्रज्ञप्तानि ?” “एव खलु जम्बु ! श्रमणेन
 यावत्सप्राप्तेनानुत्तरोपपातिक-दशाना प्रथमस्य वर्गस्य दशाध्य-
 यनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—(१)जालि (२) मयालि (३) उप-
 जालि (४) पुरुषपेण (५) वारिपेण (६) दीर्घदान्तश्च (७) लट्ट-

दान्तश्च (८) वेहल्ल (९) वेहायस (१०) अमय इति च कुमाराः ।

पदार्थान्वय.—तते—तन्तु ख—वाक्यालङ्कार के लिए है से—वह सुधर्मे—
सुधर्मा अणुगारे—अनगार जनु अणुगार—जन्मू अनगार को एव—इस प्रकार वयासी—
कहने लगा जन्मू—हे जन्मू ! एव—इस प्रकार खलु—निश्चय से समणेण—श्रमण
भगवान् महावीर ने जो जाव—यावत् सपत्तेण—मोक्ष को प्राप्त हो चुके हैं
नवमस्स—नौवें अगस्स—अङ्ग अणुत्तरोववाडय दसाण—अनुत्तरोपपातिक-दशा के
तिण्णि—तीन वर्गा—वर्ग पण्णत्ता—प्रतिपादन किये हैं । भते—हे भगवन् ! जति ख—
यदि जाव—यावत् सपत्तेण—मोक्ष को प्राप्त हुए समणेण—श्रमण भगवान् ने नवमस्स—
नौवें अगस्स—अङ्ग अणुत्तरोववाडय-दसाण—अनुत्तरोपपातिक-दशा के तत्रो—तीन
वर्गा—वर्ग पण्णत्ता—प्रतिपादन किये हैं तो भते—हे भगवन् ! पढमस्स—प्रथम
वर्गस्स—वर्ग अणुत्तरोववाडय दसाण—अनुत्तरोपपातिक दशा के जाव—यावत्
सपत्तेण—मोक्ष को प्राप्त हुए समणेण—श्रमण भगवान् ने कइ—कितने अज्झयणा—
अध्ययन पण्णत्ता—प्रतिपादन किये हैं ? जन्मू—हे जन्मू ! एव—इस प्रकार खलु—निश्चय
से सपत्तेण—मोक्ष को प्राप्त हुए जाव—यावत् समणेण—श्रमण भगवान् ने अणुत्तरो-
ववाडय-दसाण—अनुत्तरोपपातिक दशा के पढमस्स—प्रथम वर्गस्स—वर्ग के दस—दश
अज्झयणा—अध्ययन पण्णत्ता—प्रतिपादन किये हैं त जहा—जैसे जालि—जालि कुमार
मयालि—मयालि कुमार उवयालि—उपजालि कुमार य—और पुरिमसेणे—पुरुपसेन
कुमार य—और वीरसेणे—वीरसेन कुमार य—और दीहदते—दीर्घदान्त कुमार य—
और लडुदते—लघुदान्त कुमार य—और वेहल्ले—वेहल्ल कुमार वेहासे—वेहायस कुमार
य—और अमये—अमय कुमार इति य—इस प्रकार कुमारे—उक्त दश कुमारों के नाम
वर्णन किये हैं ।

मूलार्थ—इसके अनन्तर वह सुधर्मा अनगार जन्मू अनगार से कहने
लगे “हे जन्मू ! इस प्रकार मोक्ष को प्राप्त हुए श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी
ने नौवें अङ्ग, अनुत्तरोपपातिक-दशा, के तीन वर्ग प्रतिपादन किये हैं” । “हे भगवन् !
मुक्ति को प्राप्त हुए श्री श्रमण भगवान् ने यदि नौवें अङ्ग, अनुत्तरोपपातिक-
दशा, के तीन वर्ग प्रतिपादन किये हैं तो हे भगवन् ! प्रथम वर्ग, अनुत्तरोपपातिक-
दशा, के कितने अध्ययन प्रतिपादन किये हैं ?” श्री सुधर्मा कहने लगे “हे

जम्बू! इम प्रकार मोक्ष को प्राप्त हुए श्री भगवान् ने प्रथम वर्ग, अनुत्तरोपपातिक-दशा, के दश अध्ययन प्रतिपादन किये हैं, जैसे—जालि कुमार, मयालि कुमार, उपजालि कुमार, पुरुपसेन कुमार, वारिसेन कुमार, दीर्घदांत कुमार, लष्टदात कुमार, वेहल्ल कुमार, वेहायम कुमार और अभय कुमार । यही प्रथम वर्ग के अध्ययनों के नाम हैं ।

टीका—इस सूत्र में इस ग्रन्थ का विषय संक्षेप में बताया गया है और साथ ही इसकी सप्रयोजनता भी सिद्ध की गई है । जम्बू स्वामी ने अत्यन्त उत्कृष्ट जिज्ञासा से सुधर्मा स्वामी से पूछा कि हे भगवान् ! श्री श्रमण भगवान् महावीर, स्वामी ने अनुत्तरोपपातिक-दशा के कितने वर्ग प्रतिपादन किये हैं ? इस पर सुधर्मा अनगार ने बताया कि उक्त सूत्र के तीन वर्ग प्रतिपादन किये गए हैं । फिर जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया कि उन तीन वर्गों में से पहले वर्ग के कितने अध्ययन प्रतिपादन किये गये हैं ? उत्तर में सुधर्मा स्वामी ने कहा कि श्री श्रमण भगवान् ने पहले वर्ग के दश अध्ययन प्रतिपादन किये हैं । इनके नाम क्रम से निम्न लिखित हैं —

१—जालि कुमार २—मयालि कुमार ३—उपजालि कुमार ४—पुरुपसेन कुमार ५—वारिसेन कुमार ६—दीर्घदान्त कुमार ७—लष्टदान्त कुमार ८—वेहल्ल कुमार ९—वेहायस कुमार और १०—अभय कुमार । यही इन दश अध्ययनों के नाम हैं ।

‘मयालि कुमार’ शब्द के ससृष्ट में कई प्रकार के अनुवाद हो सकते हैं । जैसे—मकालि कुमार, मगालि कुमार और मयालि कुमार आदि । क्योंकि “क्वचजतदपयवा प्रायो लुक्” ८।१।११७॥ इस सूत्र से सूत्रोक्त व्यञ्जनों का लोप हो जाता है और फिर अवशिष्ट अक्षर के स्थान में “अणों य-श्रुति” ८।१०।१८०॥ इस सूत्र से यकार हो जाता है । किन्तु ‘अर्द्ध मागधी कोप’ में इमका ‘मयालि कुमार’ ही अनुवाद किया गया है । अतः यह नाम इसी तरह प्रसिद्ध हो गया है ।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ की सार्थकता या सप्रयोजनता किस प्रकार सिद्ध होती है ? उत्तर में कहा जाता है कि जो भव्य व्यक्ति अपने वर्तमान जन्म में सर्वथा कर्मों के क्षय करने में अममर्थ हों, वे इस जन्म के अनन्तर पाच अनुत्तर विमानों के परम-साता वेदनीय-वर्णित सुरों का अनुभव

करके निर्वाण-पद की प्राप्ति कर सकते हैं । किन्तु उनका पण्डित-वीर्य पुरुषार्थ किसी भी दशा में निरर्थक नहीं जाता । अतः इस 'सूत्र' की सार्थकता और सप्रयोजनता भली भाँति सिद्ध है ।

इस सूत्र से यह भी सिद्ध होता है कि गुरु-भक्ति से ही श्रुत-ज्ञान की अच्छी तरह से प्राप्ति हो सकती है ।

अब जन्मू अनगार सुधन्मा स्वामी से फिर प्रश्न करते हैं —

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अणुत्तरोव० समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

यदि नु भदन्त ! श्रमणेन यावत्संप्राप्तेन प्रथमस्य वर्गस्य दशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य नु भदन्त ! अध्ययनस्यानुत्तरोपपातिक-दशानां श्रमणेन यावत्संप्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ?

पदार्थान्वय — भते-हे भगवन् ! जइ-यदि जाव-यावत् सपत्तेण-मोक्ष को प्राप्त हुए समणेण-श्रमण भगवान् ने पढमस्स-प्रथम वग्गस्स-वर्ग के दस-दश अज्झयणा-अध्ययन पण्णत्ता-प्रतिपादन किये हैं, तो भते-हे भगवन् ! पढमस्स-प्रथम अज्झयणस्स-अध्ययन अणुत्तरोव०-अनुत्तरोपपातिक-दशा के जाव-यावत् सपत्तेण-मोक्ष को प्राप्त हुए समणेण-श्रमण भगवान् ने के-क्या अट्ठे-अर्थ पण्णत्ते-प्रतिपादन किया है ।

मूलार्थ—हे भगवन् ! यदि मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् ने प्रथम वर्ग के दश अध्ययन प्रतिपादन किये हैं तो हे भगवन् ! मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अनुत्तरोपपातिक दशा के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

टीका—पिछले सूत्रों का प्रश्नोत्तर क्रम इस सूत्र में भी रखा गया है,

क्योंकि यह शैली अत्यन्त रोचक है और इससे परिमित शब्दों में ही अभीष्ट अर्थ ममझाया जा सकता है । तदनुसार ही श्री जम्बू स्वामी श्री सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं कि हे भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने—जो 'नमो त्थु ण' म कहे हुए सब गुणों से परिपूर्ण हैं और मोक्ष को प्राप्त हो चुके हैं—प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? मुझको इसकी जिज्ञासा है कृपा करके यह मुझको सुनाइए ।

इस सूत्र से भी यही सिद्ध किया गया है कि विनय-पूर्वक अध्ययन किया हुआ ज्ञान ही सफल हो सकता है, अन्यथा नहीं । जो शिष्य विनय-पूर्वक गुरु से ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, उसीसे गुरु मन्मथ-ज्ञान से परिपूर्ण कर देते हैं । तथा जिसका आत्मा उक्त ज्ञान से परिपूर्ण होता है, वह सहज ही में अन्य आत्माओं के उद्धार करने में समर्थ हो सकता है । अतः सिद्ध यह हुआ कि गुरु से विनय पूर्वक ही ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । यह सफल होता है ।

अब सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी के उक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए निम्न लिखित सूत्र में प्रथम अध्ययन का अर्थ वर्णन करते हैं —

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे
णगरे रिद्धित्थिमियसमिद्धे, गुणासिलए चेतिते, सेणिए
राया, धारिणी देवी, सीहो सुमिणे । जालीकुमारो जहा
मेहो । अट्टट्टओ दाओ जाव उप्पि पासा० विहरति । सामी
समोसढे सेणिओ णिग्गओ । जहा मेहो तहा जालीवि
णिग्गतो । तहेव णिकखंतो जहा मेहो । एक्कारस अंगाइं
अहिज्जति । गुणरयणं तवोकम्मं, एवं जा चेव खंदग-
वत्तव्वया सा चेव चिंतणा आपुच्छणा थेरेहि सद्धि विपुलं
तहेव दुरूहति, नवरं सोलस वासाइं सामन्न-परियागं पाउ-

णित्ता कालमासे कालं किञ्चा उड्डं चंदिम० सोहम्मी-
 साण जाव आरणच्चुए कप्पे नव य गेवेजे विमाणपत्थडे
 उड्डं दूरं वीतीवत्तित्ता विजय-विमाणे देवत्ताए उववण्णे ।
 तते णं ते थेरा भगवंता जालिं अणगारं कालगयं जाणेत्ता
 परिनिव्वाणवत्तियं काउस्सगं करेति २ पत्त-चीवराइं
 गेण्हंति तहेव ओयरंति । जाव इमे से आयार-भंडए ।
 भंते । त्ति भगवं गोयमे जाव एवं वयासी-एवं खलु
 देवाणुप्पियाणं अंतेवासी जालि-नामं अणगारे पगति-
 भद्दए । से णं जाली अणगारे कालगते कहिं गते ? कहिं
 उववन्ने ? एवं खलु गोयमा । ममं अंतेवासी तहेव जधा
 खंदयस्स जाव कालं० उड्डं चंदिम जाव विजए विमाणं
 देवत्ताए उववन्ने । जालिस्स णं भंते । देवस्स केवत्तियं कालं
 ठिती पणत्ता ? गोयमा । वत्तिसं सागरोवमाइं ठिती
 पणत्ता । से णं भंते । ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं ३
 कहि गच्छिंहिति ? गोयमा । महाविदेहे वासे सिज्झि-
 हिति, ता एवं जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अणुत्तरोव-
 वाइयदसाणं पढम-वग्गस्स पढम-अज्झयणस्स अयमट्ठे
 पणत्ते । पढम-वग्गस्स पढम अज्झयणं समत्तम् ।

एव खलु जस्यु । तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृह
 नगरमभूत् । ऋद्धिस्तिमितसमृद्ध गुणशैलक चेत्यम् । श्रेणिको

राजा, धारिणी देवी, सिंह स्वप्ने, जालिकुमारो यथा मेघः । अष्टाष्ट
दातानि । यावदुपरि प्रासादे विहरति । स्वामी समवसृत श्रेणिको
निर्गतः । यथा मेघो तथा जालिरपि निर्गतः । तथैव निष्क्रान्तो
यथा मेघः । एकादशाङ्गान्यधीते । गुणरत्न तप-कर्म, एव या
चैव स्फुन्दक-वक्तव्यता सैव चिन्तनाऽऽपृच्छणा । स्थविरैः सार्द्धं
विपुल तथैव दू (आ) रोहति । नवर षोडश वर्षाणि श्रामण्य-पर्याय
पालयित्वा काल-मासे कालकृत्वोर्ध्वं चन्द्र० सौधर्मेशानयो
आरण्यच्युतयो कल्पे च प्रैवेयक-विमान-प्रस्तटादूर्ध्वं व्यति-
वर्त्य विजय-विमाने देवतयोत्पन्नः । ततो नु स्थविरा भगवन्तो
जालिमनगार काल-गतं ज्ञात्वा परिनिर्वाणवर्तिन कायोत्सर्गं
कुर्वन्ति, कृत्वा च पात्र-चीवराणि शृङ्खन्ति, तथैवावतरन्ति “याव-
दिमान्यस्याचार-भाण्डकानि” । “भगवन् !” इति भगवान् गोतमो
यावदेवमवादीत् “एव खलु देवानुप्रियाणामन्तेवासी जालि-
नामाऽनगार प्रकृति-भद्रक । स नु जालिरनगारः काल-गत
कुत्र गतः ? कुत्रोत्पन्नः ?” “एव खलु गोतम ! ममान्तेवासी तथैव
यथा स्फुन्दकस्य यावत् काल० ऊर्ध्वं चन्द्रमसो यावद् विजय-वि-
माने देवतयोत्पन्नः ” “जालेर्नु भगवन् ! देवस्य कियान् काल
स्थितिः प्रज्ञप्ता ?” “गोतम ! द्वात्रिंशत्सागरोपमा स्थिति
प्रज्ञप्ता” “स नु भगवन् ! ततो देवलोकादायु क्षयेण (स्थिति-
क्षयेण, भव-क्षयेण) कुत्र गमिष्यति ?” “गोतम ! महाविदेहेवर्षे
सेत्स्याति ।” तदेव जम्बु ! श्रमणेन यावत्सप्राप्तेनाऽनुत्तरोपपातिक-
दशाना प्रथम-वर्गस्य प्रथमाध्ययनस्यायमर्थः प्रज्ञप्तः । प्रथम-

वर्गस्य प्रथमाध्ययन समाप्तम् ।

पदार्थान्वय — जन् !—हे जन्मू ! एवं खलु—इम प्रकार निश्चय से (प्रथमाध्ययन का अर्थ है ।) तेण कालेण—उम काल और तेण ममण्ण—उम समय राय-गिहे—राजगृह गगरे—नगर था रिद्धि—ऋद्धि—ऊँचे ० भवन आदि तथा स्थिमिय—भय-रहित और समिद्धे—धन धान्य से युक्त था । गुणमिलण—गुणसंल चेतिते—चैत्य, सेणिए—श्रेणिक राया—राजा धारिणी देवी—धारिणी देवी सीहो सुमिणे—सिंह रा स्यप्र जालिकुमारो—जालिकुमार जहा मेहो—जैसे मेर कुमार अट्टट्टयो—आठ २ दायो—दात (अर्थात् विवाह के साथ लडकी की ओर से आने वाला दहेज) जाव—यावत् उप्पि पास०—प्रामाद के ऊपर सुख पूर्वक विहरति—विचरण करता है मामी—श्री भ्रमण भगवान् महावीर स्वामी समोसठे—मिहासन के ऊपर विराजमान हो गये सेणियो—श्रेणिक राजा णिग्गयो—श्री भगवान् की वन्दना के लिए गया जहा—जैसे मेहो—मेघकुमार गया था जालीवि—जालिकुमार भी णिग्गतो—भगवान् की वन्दना के लिए गया तहेव—उसी प्रकार णिकवतो—निकल अर्थात् दीक्षित हुआ जहा मेहो—जिस प्रकार मेघकुमार की दीक्षा हुई थी एकारम—एकादश अगाई—अन्न शाखों का ग्रहिल्लति—अध्ययन किया गुणरयण—गुणरत्न तवोक्कम्म—तप कर्म एव—इसी प्रकार जा चेव—जो कुछ भी खंदग-वत्तवया—स्फन्दक मुनि की वक्तव्यता है मा चेव—उही वक्तव्यता जालिकुमार की भी जाननी चाहिए । उसी तरह की चिंतणा—धर्म चिन्तना आपुच्छणा—श्री भगवान् से अनशन व्रत के धारण करने की आज्ञा लेना । धेरेहिं—मथत्रिगों के मद्धि—साथ तहेव—उसी प्रकार विपुल—विपुलगिरि पर दुरुद्धति—चढता है । उम पर चढ कर नवर—इतना विशेष है कि सोलस वासाड—सोलह वर्ष तक मामन्न परियाग—श्रामण्य-पर्याय का पाउणित्ता—पालन कर कालमासे मृत्यु के अवसर पर काल सिद्धा—काल करके उट्टु—उचे चदिम०—चन्द्र से यावत् सोहम्मिमाण—सौधर्म-देवलोक, ईशान देवलोक जाव—यावत् आरण्णुए—आरण्य-देवलोक और अन्नुत देवलोक अर्थात् कप्पे—नारह कल्प देवलोक य—और गेवेज्ज—प्रैवेयन विमाण—विमान पत्थडे—प्रस्तट उट्टु—इनसे भी उचे दूर—और दूर वीतिवत्तिचा व्यतिजम करके विजय विमाणे—विजय-विमान में देवत्ताण—देव रूप से उववण्णे—उत्पन्न हुआ । तते—इमके अनन्तर ण—जम्मा-

लङ्कार के लिए है ते-वे येरा भगवता-स्थविर भगवन्त जालिं-जालि अणुगार-
 अनगार को काल-गय-काल गत हुआ जाणेत्ता-जानकर परिनिच्चाण-वत्तिय-
 निर्वाण के निमित्त काउस्मग-कायोत्सर्ग करेंति २-करते हैं और फिर कायोत्सग
 करके पत्त-चीवराड-पात्र और वस्त्र गेण्हति-ग्रहण करते हैं तहेव-उसी प्रकार
 शनै शनै उस पर्वत से श्रोयरति-उतरते हैं । जाव-यावत् श्री श्रमण भगवान् महा-
 वीर स्वामी के सम्मुख आकर कहते हैं कि हे भगवन् ! इमे-वे से-उम जालि अन-
 गार के आया-भइए-वर्षा-माल आदि मे दान आदि आचार पालने के भण्डोप-
 करण हैं अर्थात् धर्म-साधन के उपयोगी उपकरण हैं । तत्र उसी समय भते ! त्ति-
 हे भगवन् ! इस प्रकार कहकर भगव-भगवान् गोयमे-गौतम स्वामी जाव-यावत्
 श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास इस प्रकार वयासी-कहने लगे एव खलु-
 इस प्रकार निश्चय से देवाणुप्पियाण-देवानुप्रिय, आपका अत्तेवासा-शिष्य जालि
 नाम-जालि नाम वाला अणुगारे-अनगार पगति भइए-प्रकृति से ही भद्र से ए-वह
 जालि अणुगारे जालि अनगार काल-गते-काल को प्राप्त हो कर कहिं गते-गहा
 गया है ? कहिं-गहा उववन्ने-उत्पन्न हुआ है ? गोयमा-हे गौतम ! एव खलु-इस
 प्रकार निश्चय से मम-मेरा अत्तेवासी-शिष्य तहेव-अर्थात् प्रकृति से भद्र जालि
 कुमार जया-जिस प्रकार सुदयस्स-सुन्दक की वक्तव्यता है उसी प्रकार जाव-
 यावत् काल-माल करके उडुठ-उचे चदिम-चन्द्र से जाव-यावत् विजए-विजय
 नाम वाले विमाणे-विमान म देवचाए-देव रूप से उववन्ने-उत्पन्न हुआ है । अपने
 प्रश्न के उचित उत्तर मिलने पर फिर गौतम स्वामी ने श्री भगवान् से पूछा भते !-
 हे भगवन् ! ए-वाम्यालङ्कार के लिए है जालिस्स-जालि देवस्स-देव की क्वे-
 त्तिय-कितने काल-काल तक ठिती-स्थिति पणुत्ता-प्रतिपादन की है ? फिर
 उत्तर मे श्री भगवान् कहने लगे गोयमा !-हे गौतम ! वत्तीम-वत्तीस सागरोव
 माइ-सागरोपम की ठिती-स्थिति पणुत्ता-प्रतिपादन की है । फिर गौतम स्वामी
 पूछते हैं भते !-हे भगवन् ! से-गहा जालिकुमार देव ताओ-उम देवलोगाओ-
 देव-लोक से आउक्खएण ३-आयु, स्थिति और देव भव-(लोक) के क्षय होने पर
 कहिं-गहा गच्छिंहिति-जायगा अर्थात् जिस स्थान पर उत्पन्न होगा । भगवान् ने
 उत्तर दिया गोयमा !-हे गौतम ! महाविदेहे वासे-महाविदेह क्षेत्र मे सिज्झिहिति-
 सिद्ध होगा अर्थात् वहा सिद्धि प्राप्त कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होगा और निर्वाण पद

प्राप्त कर सारे शारीरिक और मानसिक दुःखों का अन्त करेगा । ता—इसलिए एव—
इस प्रकार रज्जु—निश्चये से जन्म !—हे जन्म ! समणेषु—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी
ने जात्र—यान्त् सपत्नेण—जिनको मोक्ष की प्राप्ति हो चुकी है अणुत्तरोववाइय-
दसाण—अनुत्तरोपपातिक-दशा के पदमवगगस्स—प्रथम वर्ग के पदम अज्झयणस्स—
प्रथम अध्ययन का अयमद्वे—यह अर्थ पणत्ते—प्रतिपादन किया है । पदम-वगगस्स—
प्रथम वर्ग का पदम अज्झयण—प्रथम अध्ययन समत्त—समाप्त हुआ ।

मूलार्थ—हे जन्म ! इस प्रकार श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने
प्रतिपादन किया है कि उस काल और उम समय में ऋद्धि, धन, धान्य से युक्त
और भय रहित राजगृह नाम का नगर था । उसके बाहर एक गुणशील नामक
चैत्य (उद्यान) था । वहाँ श्रेणिक राजा राज्य करता था । उसकी धारिणी नाम
की देवी थी । धारिणी देवी ने स्वप्न में सिंह दखा । जिस प्रकार मेघकुमार
का जन्म हुआ था, उसी प्रकार जालिकुमार का जन्म हुआ । (जालिकुमार का
थाठ कन्याओं के साथ विवाह हुआ ।) आठों क घर से उमको बहुत दात
(दहेज) आया । इस प्रकार सारे सुखों का अनुभव करता हुआ वह अपने राज-
प्रामादों में विचरण करने लगा । इसी समय गुणशीलक चैत्य में श्री श्रमण
भगवान् महावीर स्वामी विराजमान हुए । वहाँ श्रेणिक राजा उनकी वन्दना के
लिए गया । जिस प्रकार मेघकुमार (श्री श्रमण भगवान् के दर्शना के लिए) गया
था, उसी प्रकार जालिकुमार भी गया । इसके अनन्तर ठीक मेघकुमार के समान
ही जालिकुमार भी दीक्षित हो गया । उसने एकादशाङ्ग शास्त्रा का अध्ययन
किया । इसी तरह गुणरत्न नामक तप भी किया । शेष जिस प्रकार स्कन्दक
सन्यासी की वक्तव्यता है, उसी प्रकार इसके विषय में भी जाननी चाहिए । उसी
प्रकार धर्म चिन्तना, श्री भगवान् से अनशन का विषय पूछना आदि । फिर
वह उसी तरह स्थविरों के साथ विपुलगिरि पर्वत पर चढ़ गया । विशेषता केवल
इतनी है कि वह मोलह वर्ष के श्रामण्य पर्याय का पालन कर मृत्यु के समय
के आने पर काल करके चन्द्र से ऊँचे सौधर्मेशान, आरण्यान्युत्त रूप देवलीक
और ग्रैयेक विमान प्रस्तटों में भी ऊँचे व्यतिक्रम करके विजय विमान में देव-
रूप से उदयन हुआ । तब वे स्थविर भगवान् जालि अनगर को काल गत
हुआ जानकर परिनिर्वाण प्रत्यधिक कायोत्मर्ग करके तथा जालि अनगर के

वस्त्र और पात्र लेकर उसी प्रकार पर्वत से उतर आए और श्री श्रमण भगवान् महावीर की सेवा में उपस्थित होकर उन्होंने सविनय निवेदन किया कि हे भगवन् ! ये जालि अनगार के धर्म आचार आदि साधन के उपकरण हैं । इसके अनन्तर भगवान् गोतम ने श्री भगवान् से प्रश्न किया “हे भगवन् ! भद्र प्रकृति और विनयी वह आप का शिष्य जालि अनगार मृत्यु के अनन्तर कहा गया ? कहा उत्पन्न हुआ ?” श्री श्रमण भगवान् ने इसके उत्तर में प्रतिपादन किया “हे गोतम ! मेरा अन्तेवासी जालि अनगार चन्द्र से और गारह कप देवलोक से नव ग्रैयक विमानों का उल्लङ्घन कर विजय-विमान में देव रूप से उत्पन्न हुआ है ।” गोतम ने फिर प्रश्न किया “हे भगवन् ! उम जालि देव की वहा कितनी स्थिति हैं ?” श्री भगवान् ने उत्तर दिया “हे गोतम ! जालि देव की वहां वचीम मागरोपम स्थिति प्रतिपादन की गई हैं” गोतम ने फिर पूछा “हे भगवन् ! वह जालिदेव उस देवलोक से आयु, भव और स्थिति चय होने पर कहा जायगा ?” श्री भगवान् ने फिर उत्तर दिया “हे गोतम ! तदनन्तर वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध गति प्राप्त करेगा अर्थात् यावत् मानसिक और शारीरिक दुःखों से सर्वथा मुक्त होकर निर्वाण-पद को प्राप्त करेगा” श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि हे जम्बू ! इस प्रकार मोक्ष को प्राप्त हुए श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अनुत्तरोपपातिक दशा के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है । प्रथम वर्ग का प्रथम अध्ययन समाप्त हुआ ।

टीका—इस सूत्र में जालिकुमार के विषय में प्रतिपादन किया गया है । यह ध्यान में रखने के योग्य है कि इस अध्ययन में कथित विषय ‘ज्ञातासूत्र’ के प्रथम अध्ययन के—जिसे मेघकुमार के विषय में कहा गया है—विषय से समान ही है । अर्थात् ‘ज्ञातासूत्र’ के प्रथम अध्ययन से जिसे प्रकार मेघकुमार के विषय में प्रतिपादन किया गया है, उसी प्रकार इस सूत्र के इस अध्ययन में जालिकुमार के विषय में भी प्रतिपादन किया गया है ।

इस सूत्र में सन वणन संक्षेप से ही कहा गया है । इसका कारण यही है कि ‘ज्ञातासूत्र’ में इस राजगृह नगर, श्रेणि राजा और धारिणी देवी का विस्तृत वणन किया जा चुका है । उस सूत्र की सरया ठठी है और इसकी नहीं । अत

पहले आए हुए विषय का यहाँ नेत्रल सकेतमात्र दिया गया है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए सूत्रकार ने यहाँ सश्लिष वर्णन दिया है यह जान लेना चाहिए ।

अत्र शङ्का उपरिधत होती है कि जन मेघकुमार भी जालि अनगर के समान अनुत्तर विमान में ही उत्पन्न हुआ था तो मेघकुमार का वर्णन 'ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र' में क्यों दिया गया ? उत्तर में कहा जाता है कि मेघकुमार का वर्णन छठे अङ्ग में इसलिए किया गया है कि उसमें धर्मयुक्त पुत्रों की शिक्षा-प्रद जीवन घटनाओं का वर्णन है । उनमें से मेघकुमार के जीवन में भी कितनी ही ऐसी शिक्षाएँ वर्णन की गई हैं, जिनके पढ़ने से प्रत्येक व्यक्ति को अत्यन्त लाभ हो सकता है । किन्तु अनुत्तरोपपातिङ्गसूत्र में केवल सम्यक् चरित्र पालन करने का फल बताया गया है। अतः मेघकुमार के चरित्र में विशेषता दिखाने के लिए उसका चरित्र नव अङ्ग में न देकर छठे ही अङ्ग में दे दिया गया है ।

जो व्यक्ति इस सूत्र के अध्ययन के इच्छुक हों, उनको इससे पूर्व 'ज्ञाताधर्म-कथाङ्गसूत्र' के प्रथम अध्याय का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए। यह सूत्र इतना सार-पूर्ण है कि इससे व्याकरण पढ़ने वालों को समासान्त पदों का भली भाँति बोध हो सकता है, साहित्य के अध्ययन करने वालों को अलङ्कारों का, इतिहास के जिज्ञासुओं को पचीस सौ वर्ष पहले के भारतवर्ष का, धार्मिक पुरुषों को अनेक धार्मिक शिक्षाओं का, नीति के जिज्ञासुओं को साम दाम दण्ड और भेद चारों नीतियों का भली भाँति बोध हो सकता है । न केवल इतना ही तल्लि शिल्पी व्यक्तियों को अनेक प्रकार के शिल्प और कलाओं का, काम-शास्त्र के जिज्ञासुओं को तरणी-प्रतिक्रम और धार्मिक-दीक्षा आदि महोत्सव मनाने वालों को अनेक प्रकार के महोत्सव मनाने का पता लग जाना है । इसी प्रकार इस सूत्र से पुण्यात्माओं को पुण्य और पापात्माओं को पाप का फल भी ज्ञात हो जाता है । पुनर्जन्म न मानने वालों को उसकी सिद्धि के अत्युत्तम प्रमाण इसमें मिल सकते हैं । अध्यापक लोग भी इससे प्राचीन अध्यापन-शैली का एक अत्युत्तम चित्र प्राप्त कर सकते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि कोई व्यक्ति जो इस सूत्र का स्वाध्याय करेगा, जिना कुछ प्राप्त किये निराश नहीं जा सकता । अतः प्रत्येक को इसका स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए । इसी बात को लक्ष्य में रखते हुए सूत्रकार ने यहाँ इस विषय का अधिक विस्तार नहीं किया । क्योंकि यदि आकाशा रहेगी तो पाठक अवश्य ही उसको पूर्ण करने के लिये उक्त

‘ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र’ का अध्ययन करेंगे और उससे उनसे ज्ञान-भण्डार में अधिक से अधिक वृद्धि होगी । अतः निस ग्रन्थ के पढ़ने से सूत्र सम्बन्धी सत्र बातों के ज्ञान के साथ कुछ और भी उपलब्ध हो, उसको क्यों न पढा जाय । बुद्धिमान् लोग सदा ऐसे ही कार्य किया करते हैं, जिनमें एक ही क्रिया से दो कार्यों का साधन हो । सारांश यह है कि उपादेय वस्तु का सदा आदर होना चाहिए और उक्त शास्त्र सर्वथा उपादेय है । अतः उसका स्वाध्याय भी अवश्य करना चाहिए ।

यहां पर हस्त-लिखित प्रतियों में उपलब्ध पाठ-भेद भी नहीं दियाये गये हैं, क्योंकि वे सब ‘ज्ञाताधर्मकथाङ्ग’ के ही पद हैं ।

अब सूत्रकार शेष अध्ययनों के विषय में कहते हैं —

एवं सेसाणवि अट्टण्हं भाणियव्वं, नवरं सत्त धारिणि-सुआ वेहल्ल-वेहासा चेह्लणाए । आडल्लाणं पंचण्हं सोलस वासाति सामन्न-परियातो, तिण्हं वारस वासातिं दोण्हं पंच वासातिं । आडल्लाणं पंचण्हं आणुपुव्वीए उव-वायो विजये, वेजयंते, जयंते, अपराजिते, सव्वट्ट-सिद्धे । ढीहदंते सव्वट्टसिद्धे । उक्कमेणं सेसा । अभओ विजए । सेसं जहा पढमे । अभयस्स णाणत्तं, रायगिहे नगरे, सेणिए राया, नंदा देवी माया, सेसं तहेव । एवं खल्लु जंबू । समणेणं जाव संपत्तेणं अणुत्तरोववाइय-दसाणं पढमस्स वग्गस्म अयमट्ठे पण्णत्ते । (सूत्र १)

एव शेषाणामप्यष्टानां भणितव्यम्, नवरं सत्त धारिणि-सुता, वेहल्ल-वेहायसौ चेह्लणाया आदिकानां पञ्चाना पोटश वर्षाणि श्रामण्य-पर्यायम्, त्रयाणा द्वादश वर्षाणि, द्वयो पञ्च

वर्षाणि । आदिकानां पञ्चानामानुपूर्व्योपपातो विजये, वैजयन्ते, जयन्ते, अपराजिते, सर्वार्थसिद्धे । दीर्घदन्तस्य सर्वार्थसिद्धे । उत्क्रमेण शेषाः । अभयो विजये । शेष यथा प्रथमस्य । अभयस्य नानात्व राजगृह नगरम्, श्रेणिको राजा, नन्दादेवी माता, शेष तथैव । एवं खलु जम्बु । श्रमणेन यावत्सप्राप्तेनानुत्तरोपपातिक-दशानां प्रथमस्य वर्गस्यायमर्थः प्रज्ञप्त । (मूत्र १)

पदार्थान्वय — एव—इमी प्रकार सेमाण्वि—शेष ग्रहणह—आठ अध्ययनों का भी वर्णन भाणियव्व—जानना चाहिए नवर—त्रिशेष इतना ही है कि मत्त—सात धारिणि—सुआ—धारिणी देवी के पुत्र थे और वेहल्ल वेहासा—वेहल्ल और वेहायस कुमार चेहणादेवी के पुत्र थे । आइल्लाण—आदि के पचण्ह—पाचों ने सोलस वामाति—मोलह वर्ष का सामन्न परियातो—श्रामण्य पर्याय पालन क्रिया और तिण्ह—तीन ने चारम वासाति—चारह वर्षों का सयम—पर्याय पालन क्रिया और दोएह—दो ने पंच वासाति—पाच वर्ष का सयम—पर्याय पालन क्रिया था, आइल्लाण—आदि के पचण्ह—पाच की आणुपुव्वीए—अनुक्रम से विजये—विजय विमान वैजयते—वैजयन्त विमान जयते—जयन्त विमान अपराजिते—अपराजित विमान और सव्वट्ट-सिद्धे—सर्वार्थसिद्ध विमान में उववायो—उत्पत्ति हुई और उत्क्रमेण—उत्क्रम से सेसा—अवशिष्ट कुमारों की उत्पत्ति हुई । किन्तु दीर्घदन्ते—दीर्घदन्त भी सव्वट्टसिद्धे—सर्वार्थ-सिद्ध विमान में और अभयो—अभय कुमार विजए—विजय विमान में ही उत्पन्न हुए । सेम—शेष अधिकार जहा—जैसे पहमे—प्रथम अर्थात् जालि कुमार के विषय में कहा गया है उमी प्रकार जानना चाहिए । अभयस्स—अभय कुमार की शरणत्त—त्रिशेषता इतनी ही है कि वह रायगिहे—राजगृह नगरे—नगर में उत्पन्न हुआ था और सेणिए—श्रेणिक राया—राजा (उसका पिता था) तथा नदा देवी—नन्दादेवी माया—माता थी सेम—शेष वर्णन तहेव—पूर्ववत् ही जानना चाहिए । जजू—सुधर्मा स्वामी जी जम्बू स्वामी को सम्बोधित कर कहते हैं “हे जम्बू ! एव—इस प्रकार खलु—निश्चय से जाव—यावत् सपत्तेण—मोक्ष को प्राप्त हुए मणमण—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने आणुत्तरोववाइयदसाण—अनुत्तरोपपातिक—दशा के पहमस्स—प्रथम

वग्गस्स-वर्ग का अयमद्वे-यह अर्थ पण्णत्ते-प्रतिपादन किया है (सूत्र १-पहला सूत्र समाप्त हुआ ।)

मूलार्थ—इसी प्रकार शेष आठ (नों) अध्ययनों के विषय में भी जानना चाहिए । विशेषता केवल इतनी ही है कि अवशिष्ट कुमारों में से सात धारिणी देवी के पुत्र थे, वेहल्ल और वेहायस कुमार चेल्लणा देवी के पुत्र थे । पहले पाच ने सोलह वर्ष तक, तीन ने बारह वर्ष और दो ने पाच वर्ष तक समय-पर्याय का पालन किया था । पहल पाच क्रम से विजय, वंजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध विमानों में, दीर्घदन्त सर्वार्थसिद्ध और अभयकुमार और विजय विमान में उत्पन्न हुए और शेष अधिकार जिम प्रकार प्रथम अध्ययन में वर्णन किया गया है उसी प्रकार जानना चाहिए । अभयकुमार के विषय में इतनी विशेषता है कि वह राजगृह नगर में उत्पन्न हुआ था और श्रेणिक राजा तथा नन्दादेवी उमके पिता-माता थे । शेष सब वर्णन पूर्ववत् ही है ।

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि ह जम्बू ! मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अनुत्तरोपपातिक दशा के प्रथम वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है । पहला वर्ग समाप्त हुआ ।

टीका—इस सूत्र में प्रथम वर्ग के शेष नौ अध्ययनों का वर्णन किया गया है । इनका विषय भी प्रायः पहले अध्ययन के साथ मिलता-जुलता है । विशेषता केवल इतनी है कि इनमें से सात तो धारिणी देवी के पुत्र थे और वेहल्ल कुमार और वेहायस कुमार चेल्लणा देवी के तथा अभय कुमार नन्दा देवी के पेट से उत्पन्न हुआ था । पहले पांचों ने सोलह वर्ष समय-पर्याय का पालन किया था, तीन ने बारह वर्ष तक और शेष दो ने पाच वर्ष तक । पहले पाच अनुक्रम से पांच अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए और पिछले उत्क्रम से पाच अनुत्तर विमानों में । यह इन दश मुनियों के उत्कट समय पालन का फल है कि वे एकावतारी होकर उक्त विमानों में उत्पन्न हुए । सिद्ध यह हुआ कि सम्यक् चारित्र पालन करने का सदैव उत्तम फल होता है । उस फल का ही यहाँ सुचारु रूप से वर्णन किया गया है । जो भी व्यक्ति सम्यक् चारित्र का आराधन करेगा, वह शुभ फल से कभी भी वञ्चित नहीं रह सकता । अतः यह प्रत्येक व्यक्ति के लिये उपादेय है ।

इन नौ अध्ययनों के विषय में हस्त-लिखित प्रतियों में निम्न लिखित पाठभेद मिलता है—

“एष सेसाणत्रि नत्रण्ह भाणियञ्च नत्रर सत्तण्ह धारिणिसुया, त्रिहहे त्रिहायसे चेह्णणाअत्तए, अभय नदाएअत्तड । आइह्णण पचण्ह सोलम वासाइ सामण्ण परियाओ पाउणित्ता, तिण्ह वारम चामाइ दोण्ह पच वासाइ । आइह्णण पचण्ह आणुपुब्धीए उववाओ विजए, त्रिजयते, जयते, अपराजिण्ण सञ्चट्टमिद्धे वीहन्ते, सञ्चट्टसिद्धे, लट्टदते अपराजिए, त्रिहहे जयते, त्रिहायसे विजयते, अभय त्रिजए । सेस जहा पढमे तहेव । एष खलु जवु^१ समणेण चाप सपत्तेण अणुत्तरो-पराइय-उसाण पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते । इति प्रथम-वर्गं समाप्त ।”

हमने यहाँ पत्राकार मुद्रित पुस्तक का ही पाठ मूल रूप में रखा है । मुद्रित पुस्तक में जैसे कि पाठकों को हमारे मुद्रित मूल से ज्ञात होगा शेष आठ अध्ययनों के विषय में ही पाठ दिया गया है । किन्तु लिखित प्रतियों में जैसा कि ऊपर दिया गया है पूरे नौ अध्ययनों के विषय में कहा गया है । किन्तु इस में कोई भेद नहीं पड़ता, क्योंकि मुद्रित पुस्तक में भी पहले आठ का वर्णन देकर अन्त में अभय कुमार का भी पृथक् वर्णन दे दिया गया है और लिखित प्रतियों में सत्र का सप्रह-रूप से ही दिया है । अतः इस में कोई विशेष आपत्ति न देखकर ही हमने मुद्रित पुस्तक का पाठ ही मूल में रखा है ।

इस सूत्र से पाठकों को शिक्षा लेनी चाहिए कि वे भी कर्म-विशुद्धि के उपायों का अन्वेषण करें । इस प्रकार श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अनु-चगोपपातिक सूत्र के प्रथम वर्ग का अर्थ प्रतिपादन किया है ।

श्री सुधर्मा स्वामी के इस प्रकार कथन से उनकी गुरु-भक्ति प्रकट होती है । साथ ही आत्मोद्धतता का परिहार और शास्त्र की सप्रयोजनता भी सिद्ध होती है । जम्बू स्वामी ने उनके इस कथन को सहर्ष स्वीकार किया । इसमें इस सूत्र की प्रामाणिकता भी सिद्ध होती है । आप्त-ग्रन्थ सर्वत्र ही प्रामाणिक होते हैं । अतः यह सूत्र भी आप्त-वाक्य होने से निःसन्देह ही प्रमाण-कोटि में है ।

द्वितीयो वर्गः



जति णं भंते । समणेणं जाव संपत्तेणं अणुत्तरो-
ववाइयदसाणं पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्च-
स्स णं भंते । वग्गस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं समणेणं
जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू । समणेणं
जाव संपत्तेणं दोच्चस्स वग्गस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं
तेरस्स अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—(१) दीहसेणे (२)
महासेणे (३) लट्ठदंते य (४) गूढदंते य (५) सुद्धदंते (६)
हल्ले (७) दुमे (८) दुमसेणे (९) महादुमसेणे (१०) आहिते
सीहे य (११) सीहसेणे य (१२) महासीहसेणे य आहिते
(१३) पुन्नसेणे य वोद्धव्वे तेरसमे होति अज्झयणे ।

यदि नु भदन्त ! श्रमणेन यावत्सप्राप्तेनानुत्तरोपपातिक-
दशाना प्रथमस्य वर्गस्यायमर्थः प्रज्ञत , द्वितीयस्य नु भदन्त !
वर्गस्यानुत्तरोपपातिक-दशाना श्रमणेन यावत्सप्राप्तेन कोऽर्थः

प्रज्ञप्तः ? एवं खलु जम्बु । श्रमणेन यावत्सप्राप्तेन द्वितीयस्य वर्गस्यानुत्तरोपपातिक-दशानां त्रयोदशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि । तद्यथा—(१) दीर्घसेनः (२) महासेन. (३) लष्टदन्तश्च (४) गूढ-दन्तश्च (५) शुद्धदन्तः (६) हल्लः (७) द्रुमः (८) द्रुमसेनः (९) महा-द्रुमसेनश्च (१०) आख्यातः सिंहश्च (११) सिंहसेनश्च (१२) महा-सिंहसेनश्चाख्यातः (१३) पुण्यसेनश्च बोद्धव्यः । त्रयोदश भव-न्त्यध्ययनानि ।

पदार्थान्वय — ए—गम्यालङ्कार के लिए है भते-हे भगवन् ! जति-यदि जाव-यावत् सपत्तेण-मोक्ष को प्राप्त हुए समणेण-श्रमण भगवान् ने अणुत्तरोव-वाड्यदसाण-अनुत्तरोपपातिक-दशा के पढमस्म-प्रथम वर्गस्स-वर्ग का अयमट्ठे-यह अर्थ पण्णत्ते-प्रतिपादन किया है तो फिर भते-हे भगवन् ! दोच्चस्म-द्वितीय वर्गस्म-वर्ग अणुत्तरोववाड्यदसाण-अनुत्तरोपपातिक-दशा का जाव-यावत् सप-त्तेण-मोक्ष को प्राप्त हुए समणेण-श्रमण भगवान् ने के अट्ठे-कौनसा अर्थ पण्णत्ते-प्रतिपादन किया है ? सुधम्मं स्वामी कहते हैं कि जम्बू-हे जम्बू ! एव-इस प्रकार खलु-निश्चय से जाव-यावत् सपत्तेण-मोक्ष को प्राप्त हुए समणेण-श्रमण भगवान् दोच्चस्म-द्वितीय वर्गस्म-वर्ग अणुत्तरोववाड्यदसाण-अनुत्तरोपपातिकदशा के तेरम-तेरह अज्झयणा-अध्ययन पण्णत्ता-प्रतिपादन किये हैं त०-जैसे-दीहसेणे-दीर्घसेन कुमार महासेणे-महासेन कुमार य-और लद्धदत्ते-लष्टदन्त कुमार य-और गूढदत्ते-गूढदन्त कुमार सुद्धदत्ते-शुद्धदन्त कुमार हल्ले-हल्ल कुमार दुमे-द्रुम कुमार द्रुमसेणे-द्रुमसेन कुमार य-और महाद्रुमसेणे-महाद्रुमसेन कुमार आहिये-कथन किया गया है य-और सीहे-मिह कुमार य-तथा सीहसेणे मिहसेन कुमार महा-सीहसेणे-महामिहसेन कुमार आहिते-प्रतिपादन किया गया है य-और पुन्नसेणे-पुण्यसेन बोद्धव्वे-तेरहवा पुण्यसेन जानना चाहिए । इस प्रकार तेरममे-तेरह अज्झ-यणे-अध्ययन होति-होते हैं ।

मूलार्थ—हे भगवन् ! यदि मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् ने अनु-त्तरोपपातिक-दशा के प्रथम वर्ग का पूर्वोक्त अर्थ प्रतिपादन किया है तो मोक्ष

को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् ने अनुत्तरोपपातिक दशा के द्वितीय वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? श्री सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया कि हे जम्बू ! मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् ने अनुत्तरोपपातिक-दशा के द्वितीय वर्ग के तेरह अध्ययन प्रतिपादन किये हैं जैसे—दीर्घसेन कुमार, महासेन कुमार, लघुदन्त कुमार, गूढदन्त कुमार, शुद्धदन्त कुमार, हल्ल कुमार, द्रुम कुमार, द्रुमसेन कुमार, महाद्रुमसेन कुमार, सिंह कुमार, भिहसेन कुमार, महासिंहसेन कुमार और पुण्यसेन कुमार । इस प्रकार द्वितीय वर्ग के तेरह अध्ययन होते हैं ।

टीका—प्रथम वर्ग की समाप्ति के अनन्तर श्री जम्बू स्वामी जी ने श्री सुधर्मा स्वामी जी से सविनय निवेदन किया कि हे भगवन् ! अनुत्तरोपपातिक सूत्र के प्रथम वर्ग का अर्थ जिम प्रकार श्री श्रमण भगवान् ने प्रतिपादन किया था वह मैंने आपके मुग्गारविन्द से उपयोग-पूर्वक श्रवण कर लिया है । अब, हे भगवन् ! आप कृपया मुझको बताइए कि मोक्ष को प्राप्त हुए श्री श्रमण भगवान् ने अनुत्तरोपपातिक-दशा के द्वितीय वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? इस प्रश्न को सुन कर श्री सुधर्मा स्वामी अपने प्रिय शिष्य को सम्बोधित कर कहने लगे कि हे जम्बू ! मोक्ष को प्राप्त हुए श्री श्रमण भगवान् ने उक्त सूत्र के द्वितीय वर्ग के तेरह अध्ययन प्रतिपादन किये हैं । पाठक उनका नाम मूलार्थ और पदार्थान्वय से जान ले ।

उक्त कथन से भली भाँति सिद्ध होता है कि अपने से बड़ों से जो कुछ भी पूछना हो वह नम्रता से ही पूछना चाहिए । विनय पूर्वक प्राप्त किया हुआ ज्ञान ही पूर्णरूप से सफल हो सकता है और सर्वथा विकास को प्राप्त होता है । अतः प्रत्येक छात्र को गुरु से शास्त्राध्ययन करते हुए विनय से रहना चाहिए । अन्यथा उसका अध्ययन कभी भी सफल नहीं हो सकता ।

सामान्य रूप से द्वितीय वर्ग के तेरह अध्ययनों का नाम सुनकर श्री जम्बू स्वामी विशेष रूप से प्रत्येक अध्ययन के अर्थ जानने की इच्छा से फिर श्री सुधर्मा स्वामी से विनय-पूर्वक पूछते हैं —

जति णं भंते ! समणणे जाव संपत्तणे अणुत्तरो-
ववाइय-दसाणं दोच्चस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पं०

दोच्च० भंते । वग्गस्स पढमज्झयणस्स सम० ३ जाव
 सं० के अट्टे पं० ? एवं खलु जंबू । तेणं कालेणं तेणं
 समएणं रायगिहे णगरे, गुणसिलते चैतिते, सेणिए राया,
 धारिणी देवी, सीहो सुमिणे, जहा जाली तहा जम्मं
 वालत्तणं कलातो नवरं दीहसेणे कुमारे । सच्चेव वत्तव्वया
 जहा जालिस्स जाव अंतं काहिति । एवं तेरसवि रायगिहे
 सेणिओ पिता धारिणी माता । तेरसण्हवि सोलसवासा
 परियातो, आणुपुव्वीए विजए दोन्नि, वेजयंते दोन्नि,
 जयंते दोन्नि, अपराजिते दोन्नि, सेसा महाडुमसेणमाती
 पंच सव्वट्टसिद्धे । एवं खलु जंबू । समणेणं० अनुत्तरो-
 ववाइय-दसाणं दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्टे पण्णत्ते । मासि-
 याए संलेहणाए दोसुवि वग्गेसु । (सूत्र २)

यदि नु भदन्त । श्रमणेन यावत्सप्राप्तेनानुत्तरोपपातिक-
 दशानां द्वितीयस्य वर्गस्य त्रयोदशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, द्विती-
 यस्य, भदन्त । वर्गस्य प्रथमाध्ययनस्य श्रमणेन यावत्सप्राप्तेन
 कोऽर्थं प्रज्ञप्तः ? एव खलु जम्बु । तस्मिन् काले तस्मिन् समये
 राजगृह नगरगुणशैलकं चैत्यम्, श्रेणिको राजा धारिणी देवी,
 सिंह स्वप्ने, यथा जालेस्तथैव जन्म, वालत्व, कला, नवर दीर्घ-
 सेन कुमारः । सा चैव वक्तव्यता यथा जालेर्यावदन्त करिष्यति ।
 एवं त्रयोदशापि । राजगृहम्, श्रेणिकः पिता, धारिणी माता,
 त्रयोदशानामपि षोडश वर्षाणि पर्याय । आनुपूर्व्या विजये

द्वौ, वैजयन्ते द्वौ, जयन्ते द्वौ, अपराजिते द्वौ, शेषा महाद्रुम-
सेनादयः पञ्च सर्वार्थसिद्धे । एव खलु जन्तु । श्रमणेन० अनु-
त्तरोपपातिक-दशानां द्वितीयस्य वर्गस्यायमर्थः प्रज्ञप्तः । मासिक्या
सलेखनया द्वयोरपि वर्गयोः (सूत्र २)

पदार्थान्वय — भते-हे भगवन् । श्ण-वाक्यालङ्कार के लिए है जति-यदि
जाव-यावत् सपत्नेण-मोक्ष को प्राप्त हुए समणेण-श्रमण भगवान् ने दोचस्म-
द्वितीय वर्गस्म-वर्ग श्रणुत्तरोववाइयदसाण-अनुत्तरोपपातिक दशा के तेरस-तेरह
श्रज्भयणा-अध्ययन प०-प्रतिपादन किये हैं, तो भते-हे भगवन् । दोच०-द्वितीय
वर्गस्म-वर्ग के पढमज्भयणस्म-प्रथमाध्ययन का स०-मोक्ष को प्राप्त हुए सम०३-
श्रमण भगवान् महावीर ने के-क्या अट्टे-अर्थ प०-प्रतिपादन किया है जन्-
हे जन्तु । एव खलु-इस प्रकार निश्चय से तेण कालेण-उस काल और तेण समएण-
उस समय रायगिहे-राजगृह श्णगरे-नगर गुणमिलते-गुणशैलक चेतिते-चेत्य
सेणिए-श्रेणिक राया-राजा धारिणी देवी-और उसकी धारिणी देवी थी । मुमिणे-
स्वप्न म सीहो-सिंह का दिखाई देना जहा-जिस प्रकार जाली-जालि कुमार के
विषय में कहा गया है तहा-उसी प्रकार जम्म-जन्म हुआ, उसी प्रकार बालत्तण-
बाल भान रहा, उसी प्रकार कलातो-कलाओं का सीखना नवर-विशेषता इतनी है
कि दीहसेणे-दीर्घसेन कुमार इसका नाम रखा गया जहा-जैसी जालिस्स-जालि
कुमार की वत्तव्या-वत्तव्यता थी सच्चेव-दीर्घसेन कुमार की वैसी ही हुई । उसी
प्रकार जाव-यावत् अत काहिति-अन्त करेगा, एव इसी प्रकार तेरमवि-सब तेरह
कुमारों के अध्ययनों के विषय में जानना चाहिए अर्थात् वे भी रायगिहे-राजगृह
नगर में उत्पन्न हुए सेणियो-श्रेणिक राजा पिता-उनका पिता हुआ और धारिणी
माता-धारिणी माता । तेरसण्हवि-तेरह के तेरह कुमारों ने सोलस-वासा-सोलह
वर्ष तक परियातो-सयम-पर्याय का पालन किया आणुपुव्वीए-अनुक्रम से दोन्नि-
दो विजए-विजय विमान में उत्पन्न हुए, दोन्नि-दो वैजयन्ते-वैजयन्त विमान में
दोन्नि-दो जयन्ते-जयन्त विमान में और दोन्नि-दो अपराजिते-अपराजित
विमान में गए । सेसा-शेष महामदुसेणमाती-महामदुसेन आदि पच-पाच साधु
सव्वट्टमिद्धे-सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए । जन्-हे जन्तु । एव खलु-इस

प्रकार ममण्ण—मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर ने अनुत्तरोपवाडय-दमाण—अनुत्तरोपपातिक दशा के दोन्चस्म—द्वितीय वर्गस्म—वर्ग का अयमट्टे—यह अर्थ पण्णत्ते—प्रतिपादन किया है । दोसुवि—दोनों ही वर्गोसु—वर्गों में मासियाए—मासिक २ सलेहणाए—सलेखना से शरीर का त्याग किया । अर्धान् दोनों वर्गों के प्रत्येक साधु ने एक २ मास का पादोपगमन अनशन त्रत धारण किया था ।

मूलार्थ—हे भगवन् ! यदि मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् ने अनुत्तरोपपातिक-दशा के द्वितीय वर्ग के तेरह अध्ययन प्रतिपादन किये हैं तो फिर हे भगवन् ! द्वितीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? सुधर्मा स्वामी जी ने जम्बू स्वामी के इस प्रश्न के उत्तर में कहा कि हे जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नाम नगर था । उसमें गुणशैलक चैत्य था । वहा श्रेणिक राजा था । उमकी धारिणी देवी थी । उसने सिंह का स्वप्न देखा । जिस प्रकार जालि कुमार का जन्म हुआ था, उसी प्रकार जन्म हुआ, उसी प्रकार बालकपन रहा और उसी प्रकार कलाए सीखीं । विशेषता केवल इतनी है कि इसका नाम दीर्घसेन कुमार रखा गया । शेष वक्तव्यता जैसे जालि कुमार की है, उसी प्रकार जाननी चाहिए । यावत् महाविदेह क्षेत्र में मोक्ष प्राप्त करेगा इत्यादि । इसी प्रकार तेरह अध्ययनों के तेरह कुमारों के विषय में जानना चाहिए । ये सत्र राजगृह नगर में उत्पन्न हुए और सत्र के सब महाराज श्रेणिक और महाराणी धारिणी देवी के पुत्र थे । इन तेरहों ने सोलह वर्ष तक सयम पर्याय का पालन किया । इसके अनन्तर क्रम से दो विजय विमान, दो वैजयन्त विमान, दो जयन्त विमान और दो अपराजित विमान में उत्पन्न हुए । शेष महाद्रुमसेन आदि पाच मुनि सर्वार्थमिद्ध विमान में उत्पन्न हुए । हे जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने अनुत्तरोपपातिक-दशा के द्वितीय वर्ग का उक्त अर्थ प्रतिपादन किया है । उक्त दोनों वर्गों के मुनि एक २ मास के अनशन और सलेखना से काल-गत हुए थे । अर्थात् तेईस मुनियों ने एक २ मास का पादोपगमन और अनशन किया था ।

टीका—उक्त सूत्र में द्वितीय वर्ग के तेरह अध्ययनों का अर्थ वर्णन किया गया है । ये सत्र तेरह राजकुमार श्रेणिक राजा और धारिणी देवी के आश्रय अर्थात्

पुत्र थे । ये तेरह महर्षि सोलह २ वर्ष तक समय-पर्याय का पालन कर अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए । उन विमानों का नाम मूलार्थ में दे दिया गया है ।

यहा यह सब संक्षेप में इसलिये दिया गया है कि इन सबका वर्णन 'ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र' के मेघ कुमार के समान ही है । इसके विषय में हम प्रथम अध्ययन में बहुत कुछ लिख चुके हैं । अतः यहा फिर से उसका दोहराना उचित प्रतीत नहीं होता । कहने का सारांश इतना ही है कि विशेष जानने वालों को उक्त सूत्र के ही प्रथम अध्ययन का स्वाध्याय करना चाहिए ।

यह बात विशेष जानने की है कि इस सूत्र के उक्त दोनों वर्गों के तेईस मुनियों ने एक २ मास का पादोपगमन अनशन किया था और तदनन्तर वे उक्त अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए ।

अब यहा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि एक मास के अनशनों के साथ भक्त किस प्रकार होते हैं । उत्तर में कहा जाता है कि 'ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र' के प्रथम अध्ययन की वृत्ति में अभयदेव मूरि जी लिखते हैं 'मासिक्या—मास परिमाणया, अप्पण झूसिते त्ति—क्षपययित्वा पट्ठिर्भत्तानि, अणसणाए त्ति—अनशनेन छित्त्वा—व्यवच्छेद्य किल, दिने दिने द्वे द्वे भोजने लोक कुरुते, एवञ्च त्रिंशता दिने पट्ठिर्भत्ताना परित्यक्ता भवतीति' अर्थात् एक दिन के दो भक्त होते हैं इस प्रकार तीस दिनों के साथ भक्त होने में कोई भी सन्देह नहीं रहता ।

साठ भक्तों को छेदन कर ये महर्षि अनुत्तर विमानों में उत्पन्न होते हैं जो एकावतारी हैं । अतः इस वर्ग में सम्यग् दर्शन और ज्ञान-पूर्वक सम्यक् चारित्र्य-आराधना का फल दिखाया गया है, क्योंकि यह बात सर्व-सिद्ध है कि सम्यग् दर्शन और सम्यग् ज्ञान-पूर्वक आराधना की हुई सम्यक् क्रिया ही कर्मों के क्षय करने में समर्थ हो सकती है, न कि मिथ्या दर्शन पूर्वक क्रिया ।

यद्यपि लिखित प्रतियों में कतिपय पाठ भेद देखने में आते हैं तथापि 'ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र' का प्रमाण होने से वे यहा नहीं दिखाये गये हैं । अतः जिहासुओं को उचित है कि वे उक्त सूत्र के प्रथम अध्ययन का स्वाध्याय अवश्य करें और इन अध्ययनों से शिक्षा ग्रहण करें कि सम्यक् चारित्र्य-आराधना का कितना उत्तम फल

होता है और उस पर भी विशेषता यह कि यह चारित्राराधना भी राजकुमारों ने की । अतः प्रत्येक प्राणी को इस उत्तम मार्ग का अवलम्बन कर मोक्ष की प्राप्ति करनी चाहिए ।

द्वितीयो वर्ग समाप्त ।

तृतीयो वर्गः

जति णं भंते । समणेणं जाव संपत्तेणं अणुत्तरो०
दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पन्नत्ते तच्चस्स णं भंते ।
वग्गस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं सम० जाव सं० के
अट्ठे पं० ? एवं खलु जंबू । समणेणं अणुत्तरोववाइय-
दसाणं तच्चस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पन्नत्ता, तं
जहा—

धण्णे य सुणक्खत्ते, इसिदासे अ आहिते ।

पेळ्ळए रामपुत्ते य, चंदिमा पिट्ठिमाइया ॥१॥

पेढालपुत्ते अणगारे, नवमे पुट्ठिले इ य ।

वेहल्ले दसमे वुत्ते, इमे ते दस आहिते ॥२॥

यदि नु भदन्त । श्रमणेन यावत्सप्राप्तेनानुत्तरोपपातिक-
दशाना द्वितीयस्य वर्गस्यायमर्थं प्रज्ञप्त , तृतीयस्य नु भदन्त ।
वर्गस्यानुत्तरोपपातिक-दशाना श्रमणेन यावत्सप्राप्तेन कोऽर्थ

प्रज्ञप्त. ? एवं खलु जन्तु ! श्रमणेन यावत्संप्राप्तेनानुत्तरोपपा-
तिकदशानां तृतीयस्य वर्गस्य दशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा :-

धन्यश्च सुनक्षत्रः, ऋषिदासश्चाख्यात. ।

पेल्हको रामपुत्रश्च, चन्द्रिक पृष्टिमातृकः ॥१॥

पेढालपुत्रोऽनगारः, नवमः पृष्टिमायी च ।

वेहल्लो दशम उक्तः, इमे ते दशारज्याता ॥२॥

पदार्थान्वय — भते-हे भगवन् ! या-पूर्ववत् वाक्यालङ्कार के लिए हे जति-यदि जाव-यावत् सपत्तेण-मोक्ष को प्राप्त हुए ममणेण-श्रमण भगवान् महावीर ने अणुत्तरोववाइयदमाण-अनुत्तरोपपातिक-दशा के दोचस्म-द्वितीय वर्गस्म-वर्ग का अयमद्वे-यह अर्थ परणत्ते-प्रतिपादन किया है तो भते-हे भगवन् ! अणुत्तरोववाइयदमाण-अनुत्तरोपपातिक दशा के तच्चस्म-तृतीय वर्गस्म-वर्ग का मम० जाव म०-मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर ने के-क्या अद्वे अर्थ प०-प्रतिपादन किया है ? इस प्रश्न को सुनकर सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि जन्तु-हे जन्तु ! एव खलु-इस प्रकार निश्चय से ममणेण-श्रमण भगवान् महावीर ने अणुत्तरोववाइयदमाण-अनुत्तरोपपातिकदशा के तच्चस्म-तृतीय वर्गस्म-वर्ग के दस-दश अज्झयणा-अध्ययन पन्नत्ता-प्रतिपादन किये हैं, त जहा-जैसे-घण्णे धन्य कुमार और सुणवरत्ते-सुनश्चर कुमार अ-और इसीदासे-ऋषिदाम कुमार आहिते कथन किया गया है पेल्हए-पेल्ह कुमार य-और रामपुत्ते-राम पुत्र कुमार, चदिमा-चन्द्रिका कुमार, पिट्टिमाइया-पृष्टिमातृका कुमार पेढालपुत्ते-पेढालपुत्र अणगारं-अनगार य-और नवमे-नौवा पुट्टिल्ले-पृष्टिमायी कुमार दसमे-दशमा वेहल्ले-वेहल्ल उमार बुत्ते-कहा गया है, इमे-ये ते-ये दस-दस अध्ययन आहिते-कहे गये हैं ।

मूलार्थ—हे भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने अनुत्तरोपपातिक-दशा के द्वितीय वर्ग का उक्त अर्थ प्रतिपादन किया है, तो हे भगवन् ! मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर ने अनुत्तरोपपातिक-दशा के तृतीय वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? इसके उत्तर में सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि हे जन्तु !

मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर ने अनुत्तरोपपातिकदशा ऋ तृतीय वर्ग के दश अध्ययन प्रतिपादन किये हैं, जैसे—१-धय कुमार २-सुनक्षत्र कुमार ३-ऋषिदाम कुमार ४-पेच्छरु कुमार ५-गमपुत्र कुमार ६-चन्द्रिका कुमार ७-पृष्टिमात्रुका कुमार ८-पेटालपुत्र कुमार ९-पृष्टिमायी कुमार और १०-वेहल्ल कुमार । ये तृतीय वर्ग के दश अध्ययन कहे गये हैं ।

टीका—द्वितीय वर्ग की समाप्ति होने पर जम्बू स्वामी ने फिर सुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया कि हे भगवन् ! द्वितीय वर्ग का अर्थ तो मैंने श्रवण कर लिया है । अब मेरे ऊपर असीम कृपा करते हुए तृतीय वर्ग का अर्थ भी सुनाइए, जिस से मुझे उसका भी बोध हो जाय, इस प्रश्न के उत्तर में श्री सुधर्मा स्वामी ने प्रतिपादन किया कि हे जम्बू ! मोक्ष को प्राप्त हुए श्री श्रमण भगवान् महावीर ने तृतीय वर्ग के दश अध्ययन प्रतिपादन किये हैं । पाठकों को मूलार्थ में ही उनके नाम देना लेने चाहिए ।

यह हम पहले भी कह चुके हैं कि विनय और भक्ति से ग्रहण किया हुआ ही ज्ञान फलीभूत हो सकता है, विना विनय के नहीं । यही शिक्षा इस सूत्र से भी मिलती है । अध्ययन का अर्थ ही शिक्षा ग्रहण है । अतः पाठकों को इन सूत्रों का स्वाध्याय करते हुए अवश्य शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए । यह बात भी केवल दोहरानी मात्र ही रह जाती है कि सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति के लिये सम्यक् चारित्र की आराधना की अत्यन्त आवश्यकता है, इन दोनों बातों की शिक्षा इस सूत्र से प्राप्त होती है, अतः यह वर्ग अवश्य पठनीय है ।

अब जम्बू स्वामी तृतीय वर्ग के प्रथमाध्ययन के अर्थ के निषय में सुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते हैं,—

जति णं भंते ! सम० जाव सं० अणुत्तर० तच्च-
स्स वग्गस्स ढस अज्झयणा प०, पढमस्स णं भंते ।
अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते ?
एवं खल्लु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं कागंदी णाम
णगरी होत्था रिद्ध-त्थिमिय-समिद्धा सहसंववणे उज्जाणे

सव्वोदुए, जिअसत्तू राया, तत्थ णं कागंदीए नगरीए भद्दा णामं सत्थवाही परिवसइ, अड्ढा जाव अपरिभूआ । तीसे णं भद्दाए सत्थवाहीए पुत्ते धन्नं नाम दारए होत्था, अहीण जाव सुरूवे पंच धाती-परिग्गहित, तं० खीर-धाती । जहा महव्वले जाव वावत्तरिं कलातो अहीए जाव अलं भोग-समत्थे जाते यावि होत्था ।

यदि नु भदन्त । श्रमणेन यावत्संप्राप्तेनानुत्तरोपपातिक-दशानां तृतीयस्य वर्गस्य दशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य नु भदन्त । अध्ययनस्य श्रमणेन यावत्संप्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? एवं खलु जम्बु । तस्मिन् काले तस्मिन् समये काकन्दी नाम नगरी बभूव, ऋद्धि-स्तिमित-समृद्धा, सहस्राश्रवणमुद्यानं सर्वर्तुषु, जितशत्रू राजा । तत्र नु काकन्द्या नगर्या भद्रा नाम सार्थवाहिनी परिवसति, आढ्या यावदपरिभूता । तस्या नु भद्रायाः सार्थवाहिन्याः पुत्रो धन्यो नाम दारकोऽभूत्, अहीनो यावत्सुरूपः पञ्चधातु-परिगृहीतः, तद्यथा-क्षीर-धात्री । यथा महा-बलो यावद् द्वि-सप्ततिः कला अधीता । यावदलंभोग-समर्थो जातश्चाप्यभूत् ।

पदार्थान्वय — भते-हे भगवन् । ए-वाक्यालङ्कार के लिए है जति-यदि सम० जाव स०-मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अष्टोत्तर०-अनुत्तरोपपातिक दशा के तच्चस्म-तृतीय वर्गस्म-वर्ग के दस-दश अज्झयणा-अध्ययन प०-प्रतिपादन किये हैं तो भते-हे भगवन् । पढमस्स-प्रथम अज्झयणस्म-अध्ययन का जाव-यावत्सपत्तेण-मोक्ष को प्राप्त हुए समणेषु-श्रमण भगवान् महा-वीर ने के अट्ठे-क्या अर्थ पन्नत्ते-प्रतिपादन किया है । सुधर्मा स्वामी इस प्रश्न

के उत्तर में कहते हैं कि जन्मू-हे जम्बू ! तेण कालेण-उस काल और तेण समएण-उस समय काकदी काकन्दी ग्राम-नाम वाली शगरी-नगरी होत्था-धी और वह रिद्ध स्थिमिय समिद्धा-ऊंचे = भवनों से युक्त, निर्भय तथा धन-धान्य से पूर्ण थी । उसने बाहर सहस्रावनने-महस्रावनन नाम वाला उद्यान-उद्यान था सव्वो-दुए-सब ऋतुओं के पुष्प और फलों से युक्त था । उस नगरी में जितसत्तू-जित शतु नाम वाला राजा राज्य करता था तत्थ-उस काकदीए-काकन्दी नाम नगरीए-नगरी में भद्रा ग्राम-भद्रा नाम वाली सत्थवाही-सार्थवाहिनी परिवमइ-निवास करती थी । अइद्धा-वह ऋद्धिमती थी और जाव-यावत् अपरिभूआ-अपनी जाति और घरानरी के लोगों में धन आदि से अपरिभूत अर्थात् किसी से कम न थी । तीसे-उस भद्राए-भद्रा सत्थवाहीए-सार्थवाहिनी का पुत्ते-पुत्र धन्ने-धन्य नाम-नाम वाला दारए-वालक होत्था-था जो अहीणे-किसी इन्द्रिय से मी हीन नहीं था अर्थात् जिसकी मन इन्द्रिया परिपूर्ण थी और सुरूवे-सुरूप था पच धाती परिगहित्ते-जो पाच धातियों (धाइयों) से परिगृहीत था त०-जैसे-खीर धाई-एक धाई दूध पिलाने के लिए नियत थी और शेष जैसा महच्चले-‘भगवती सूर’ में महानल कुमार का वर्णन है उसी के समान जानना चाहिए जाव-यावत् वावत्तरि-बहत्तर कलातो-कलाए अहीए-अध्ययन की जाव-यावत् जाते-यह बालक धीरे धीरे अलभोग-समत्थे यावि-सब तरह के भोगों का उपभोग करने में समर्थ होत्था-हो गया ।

मूलार्थ-ह भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने, जो मुक्ति को प्राप्त हो चुके हैं, अनुत्तरोपपातिक दशा के तृतीय वर्ग के दश अध्ययन प्रतिपादन किये हैं तो फिर हे भगवन् ! प्रथम अध्ययन का मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? इस प्रश्न के उत्तर में श्री सुधर्मा स्वामीजी कहते हैं कि हे जम्बू ! उस काल और उस समय में काकन्दी नाम की एक नगरी थी । वह सब तरह के ऐश्वर्य और धन धान्य से परिपूर्ण थी । उममें किसी प्रकार के भी भय की शङ्का नहीं थी । उसके बाहर एक सहस्रावनन नाम का उद्यान था, जो सब ऋतुओं में फल और फूलों से भरा रहता था । उस नगरी में जितशतु नाम राजा राज्य करता था । वहा भद्रा नाम की एक सार्थवाहिनी निवास करती थी । वह अत्यन्त ममृद्विशालिनी और धन धान्य में अपनी

जाति और वरागरी के लोगों में किसी से किसी प्रकार भी परिभूत (तिरस्कृत) अर्थात् कम नहीं थी। उम भद्रा सार्थवाहिनी का धन्य नाम का एक सर्वाङ्ग पूर्ण और रूपवान् पुत्र था। उमके पालन पोषण करने के लिए पाच घाडया नियत थीं। जैसे-एक का काम केवल उमको दूध पिलाना ही रहता था। शेष वर्णन जिम प्रकार महाबल कुमार का है उसी प्रकार से जानना चाहिए। इम प्रकार धन्य कुमार (धीरे २) यम भोगो को भोगने में समर्थ हो गया।

टीका—इस सूत्र में श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी के प्रश्न के उत्तर में तृतीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का वर्णन करते हैं। यह अध्ययन धन्य कुमार के जीवन-वृत्तान्त के विषय में है। वही सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी को सुनाया है।

इम अध्ययन के पढ़ने से हमें उस समय की स्त्री जाति की उन्नत अवस्था का पता लगता है। उम समय स्त्रिया आज-कल के समान पुरुषों के ऊपर ही निर्भर नहीं रहती थीं, किन्तु स्वयं उनकी वरागरी में व्यापार आदि बड़े २ कार्य करती थीं। उन्हें व्यापार आदि के विषय में सत्र तरह का पूरा ज्ञान होता था। देगान्तरों में भी उनका व्यापार-वाणिज्य आदि का कार्य चलता था। यहा भद्रा नाम की स्त्री सार्थवाही का काम स्वयं करती थी और इम पर भी विशेषता यह कि अपनी जाति के लोगों में वह किसी से कम न थी। यह बात उस उन्नति के क्षिप्र पहुची हुई स्त्री-समाज का चित्र हमारी आँगों के सामने रखती है। इसके अतिरिक्त हमें अन्य जैन शास्त्रों के अध्ययन से निश्चय होता है कि उस समय स्त्रियों के अधिकार पुरुषों के अधिकारों से किसी अंश में भी कम न थे। उस समय की स्त्रिया वास्तव में अर्द्धाङ्गिनिया थीं। उन्होंने पुरुषों के समान ही मोक्ष-गमन भी किया। अतः शूद्र जाति और स्त्रियों को क्षुद्र मानने वालों को भ्रान्ति निवारण के लिए एक बार जैन शास्त्रों का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए।

अत्र सूत्रकार पूर्व सूत्र से ही सम्बन्ध रखते हुए कहते हैं —

तते णं सा भद्रा सत्थवाही धन्नं दारयं उम्मुक्क-वा-
लभावं जाव भोग-समत्थं वावि जाणेत्ता वत्तीसं पासाय-
वडिसते कारेति अवभुगत-मुस्सिते जाव तेसिं मज्जे भवणं

अणोग-खंभ-सय-सन्निविट्टं । जाव वत्तीसाए इवभवर-कन्न-
गाणं एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेति २ वत्तिसाओ दाओ ।
जाव उप्पि पासाय० फुट्टेतेहि विहरति ।

ततो नु सा भद्रा सार्धवाहिनी धन्य दारकमुन्मुक्त-वाल-
भावं यावद्भोग-समर्थं वापि ज्ञात्वा द्वात्रिंशत्प्रासादावतसकानि
कारयत्यभ्युद्गतोच्छ्रितानि । तेषां मध्ये भवनमनेकस्तम्भशत-
सन्निविष्टम् । यावद् द्वात्रिंशदिभ्यवर-कन्यकानामेकेन दिवसेन
पाणिं ग्राहयति । द्वात्रिंशद् दातानि । यावदुपरि प्रासादे स्फुट-
न्निर्विहरति ।

पदार्थान्वय — तते—इसके अनन्तर ए—चाक्यालङ्कार के लिये है सा—वह
भद्रा—भद्रा सत्त्ववाही—सार्धवाहिनी धन्य—धन्य दारय—वालक को उम्मुक्कगालभाव-
वालरूपन से अतिव्रान्त और जाव—यावत् भोगसमर्थ—भोगों के उपभोग करने में समर्थ
जाणेत्ता—जानकर वत्तीस—वत्तीस अद्भुतगुणस्सिते—बहुत बड़े और ऊँचे पासायव
डिसते—श्रेष्ठ प्रासाद (महल) कारेति—वनवाती है । जाव—यावत् तेसिं—उन्ने मज्ज-
मध्य में अणोगसयसन्निविट्ट—अनेक सैकड़ों स्तम्भों से युक्त भवण—एक भवन
वनवाया । जाव—यावत् उसने वत्तीसाए—वत्तीस इवभवरकन्नगाण—श्रेष्ठ भेषियों की
कन्याओं के साथ एगदिवसेण—एक ही दिन पाणिं गिण्हावेति—पाणि-ग्रहण करवाया
इनके साथ वत्तीसाओ—वत्तीस दाओ—दास, दासी, धन और धान्य आदि दहेज
आए । जाव—यावत् वह धन्य कुमार उप्पि—उपर पासाय०—श्रेष्ठ महलों में फुट्टे-
तेहि—जोग २ से वजते हुए मृत्त आदि वाद्यां के नाद से युक्त उन महलों में जाव-
यावत् पाच प्रकार के मनुष्य-सुरों का अनुभव करते हुए विहरति—त्रिचरता है ।

मूलाथ—इसके अनन्तर उम भद्रा सार्धवाहिनी ने धन्य कुमार को
वालरूपन से युक्त और सय तरह के भोगों को भोगने में समर्थ जानकर वत्तीस
बड़े २ अत्यन्त ऊँचे और श्रेष्ठ भवन बनवाये । उनके मध्य में एक सैकड़ों
स्तम्भों से युक्त भवन बनवाया । फिर वत्तीस श्रेष्ठ कुलों की कन्याओं से एक

ही णि उमका पाणि-ग्रहण कराया । उनके माथ उत्तीम (दाम, दामी और धन-धान्य से युक्त) दहेज आये । तदनन्तर धन्य कुमार अनेक प्रकार के मृदङ्ग आदि वाद्यों की ध्वनि से गुञ्जित प्रामादों के ऊपर पञ्च-विध सामारिक सुगों का अनुभव करने हुए विचरण करने लगा ।

टीका—उक्त सूत्र में धन्य कुमार के बालरूप, विद्याध्ययन, विवाह-संस्कार और सामारिक सुगों के अनुभव के विषय में कथन किया गया है । यह सत्र वर्णन 'ज्ञातासूत्र' के प्रथम अथवा पाचवें अध्ययन के साथ मिलता है । कहने की आवश्यकता नहीं कि पाठकों को वहीं से इसका बोध करना चाहिए ।

अब सूत्रकार धन्य कुमार के बोध के विषय में कहते हैं —

तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवं महावीरे समोसढे,
परिसा निग्गया, जहा कोणितो तहा जियसत्तू निग्गतो
तते णं तस्स धन्नस्स तं महता जहा जमाली तहा
निग्गतो, नवरं पायचारेणं जाव जं नवरं अम्मयं भदं
सत्थवाहिं आपुच्छामि । तते णं अहं देवाणुप्पियाणं
अंतिते जाव पव्वयामि । जाव जहा जमाली तहा आपु-
च्छड । मुच्छिया, वुत्त-पडिवुत्तया जहा महव्वले जाव जाहे
णो संचाएति जहा थावच्चापुत्तो जियसत्तुं आपुच्छति ।
छत्त-चामरातो सयमेव जितसत्तू णिक्खमणं करेति । जहा
थावच्चापुत्तस्स कण्हो जाव पव्वतिते० अणगारे जाते
ईरियासमिते जाव वंभयारी ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीरः
समवसूत, परिपन्निर्गता, यथा कूणितस्तथा जितशत्रुर्निर्गतः ।

ततो नु स धन्य (स्य) तन्महता यथा जमालिस्तथा निर्गत, नवर पादचारेण, यावन्नवरं यदम्बां भद्रां सार्धवाहिनीमापृच्छामि । ततो न्वहं देवानुप्रियाणामन्तिके यावत्प्रव्रजामि । यावद् यथा जमालिस्तथापृच्छति । मूर्च्छितोक्ति-प्रत्युक्त्या यथा महाबलो यावद् यदा न शक्नोति, यथा स्त्यावत्यापुत्रो जितशत्रुमापृच्छति । छत्र-चामरादिभिः स्वयमेव जितशत्रुर्निष्क्रमण करोति । यथा स्त्यावत्यापुत्रस्य कृष्णो यावत्प्रव्रजितोऽनगारो जात ईर्यासमितो यावद् ब्रह्मचारी ।

पदार्थान्वय — तेषु कालेषु—उस काल और तेषु समेषु—उस समय समये—श्रमण भगवन्—भगवान् महावीरे—महावीर स्वामी समोसदे—सहस्रात्रयन उद्यान में विराजमान हुए । परिमा—नगर की परिपद् निग्गया—उत्तकी चन्दना करने के लिए गई जहा—जिस प्रकार कोणित—कूणित अथवा कोणिक राजा गया था तथा—उसी प्रकार जितमत्तु—जितशत्रु भी निग्गतो—गया तते—इसके अनन्तर ए—चाक्यालङ्कार के लिये है तस्म—उह धनस्म—धन्य कुमार त—उस महता—उड़े भारी के ऐश्वर्य से जहा—जिम प्रकार जमाली—जमालि कुमार गया था तथा—उसी प्रकार निग्गतो—गया नवर—विशेषता इतनी है धन्य कुमार पायचारेण—पैदल गया, जाव—यावत् ज नवर—इतनी और विशेषता है कि उसने कहा कि मैं श्रम्य—माता भद्र—भद्रा मत्थवाहिं—सार्धवाहिनी को आपुच्छामि—पूछता हू ए—पूर्ववत् तते—इसके अनन्तर अह—मैं देवाणुप्पियाण—आपके श्रितिते—पास जाव—यावत् प—व्रयामि—प्रव्रजित हो जाउगा अर्थात् दीक्षा ग्रहण कर लूगा । जाव—यावत् जहा—जैसे जमाली—जमालि कुमार ने पूछा था तथा—उसी तरह आपुच्छइ—पूछता है । माता यह सुनकर मुच्छिया—मूर्च्छित हो गई युत्तपडियुत्तया—मूर्च्छा दृष्टने पर माता-पुत्र की इस विषय में बात चीत हुई जहा—जैसे महश्चले—महाबल कुमार की हुई थी जाव—यावत् जाहे—जब (माता) णो सचाणति—(पुत्र को रखने में) ममर्थ न हो सकी तत्र जहा—जैसे थावचापुत्तो—स्त्यावत्या पुत्र की माता ने कृष्ण को पूछा था ठीक उसी प्रकार भद्रा सार्धवाहिनी ने जियसत्तु—जित शत्रु राजा को आपुच्छइ—पूछा और दीक्षा के लिए

छत्रचामरातो०—छत्र और चामर भागा जितसत्त्-नितशत्रु राजा सयमेव—अपने आप ही निम्नमण करेति—धन्य कुमार की दीक्षा के लिये उपस्थित होगया । जहा—जैसे धावचापुत्तस्स—स्त्यावत्यापुत्र का ऋणो—कृष्ण वासुदेव ने किया था इसी प्रकार जाव—यानत पव्वतिते—प्रव्रजित होकर अणुगारे—अनगर (साधु) हुआ ईर्याममिते—वह ईर्या-ममिति वाला जाव—यावत् साधुओं के सन गुणों से युक्त वभयारी—ब्रह्मचारी हुआ ।

मूलार्थ—उम काल और उम समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहा विराजमान हुए । नगर की परिपद् उनकी वन्दना के लिये गई । कोणिक राजा के समान जितशत्रु राजा भी गया । धन्य कुमार भी जमालि कुमार की तरह गया । विशेषता केवल यही है कि धन्य कुमार पैदल ही गया । दूसरी विशेषता यह है कि (भगवान् के उपदेश को सुनकर) उसने कहा कि हे भगवन् ! मैं अपनी माता भद्रा सार्थवाहिनी को पूछ कर आता हूँ । इसके अनन्तर मे आपकी सेवा में उपस्थित होकर दीक्षित हो जाऊँगा । (वह घर आया) उमने अपनी माता से जिम प्रकार जमालि कुमार ने पूछा था, उसी प्रकार पूछा । माता यह सुनकर मूर्च्छित हो गई । (मूर्च्छा से उठने के अनन्तर) माता पुत्र में इस विषय में प्रश्नोत्तर हुए । जब वह भद्रा महानल के समान पुत्र को रो करने के लिये ममर्थ न हो सकी तो उमने स्त्यावत्यापुत्र के समान जितशत्रु राजा से पूछा और दीक्षा के लिए छत्र और चामर की याचना की । जितशत्रु राजा ने स्वय उपस्थित होकर जिम प्रकार कृष्ण वासुदेव ने स्त्यावत्यापुत्र की दीक्षा की थी इसी प्रकार धन्य कुमार का दीक्षा महोत्सव किया । धन्य कुमार दीक्षित हो गया और ईर्या-समिति, ब्रह्मचर्य आदि सम्पूर्ण गुणों से युक्त होकर विचरने लगा ।

टीका—इस सूत्र से वर्णन किया गया है कि जब श्रमण भगवान् महा-वीर स्वामी काकुन्दी नगरी में विराजमान हुए तो नगर की परिपद् के साथ धन्य कुमार भी उनके दर्शन करने और उनसे उपदेशाश्रित पान करने के लिए उनकी सेवा में उपस्थित हुआ । उनके उपदेश का धन्य कुमार पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह तत्काल ही सम्पूर्ण सामारिक भोग विलासों को छोड़ कर गृहस्थ से साधु बन गया ।

इस सूत्र में हमें चार उपमाण मिलती हैं । उनमें से दो धन्य कुमार के विषय में हैं और शेष दो में से एक चित्तशत्रु राजा की कोणिक राजा से तथा चौथी दीक्षा-महोत्सव की कृष्ण वासुदेव के किये हुए दीक्षा महोत्सव से है । ये सब 'औपपातिकसूत्र', 'भगवतीसूत्र' और 'ज्ञाताधर्मन्याससूत्र' से ली गई हैं । इन सबका उक्त सूत्रों में विस्तृत वर्णन मिलता है । अतः पाठकों को इनका एक धार अवश्य स्वाध्याय करना चाहिए । ये सब सूत्र ऐतिहासिक दृष्टि से भी अत्यन्त उपयोगी हैं । क्योंकि इस सूत्र की क्रमसरया उक्त सूत्रों के अनन्तर ही है । अतः यहाँ उक्त वर्णन के दोहराने की आवश्यकता न जान कर, इसका संक्षेप कर दिया गया है ।

अब सूत्रकार धन्य अनगार के अभिग्रह के विषय में कहते हैं —

तते णं से धन्ने अणगारे जं चेव दिवसं मुंडे
 भवित्ता जाव पव्वतिते तं चेव दिवसं समणं भगवं
 महावीरं वंदति णमंसति२ एवं व० इच्छामि णं भंते ।
 तुव्भेणं अब्भणुण्णाते समणे जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं
 अणिक्खितेणं आयंविण-परिग्गहिणं तवोकम्भेणं
 अप्पाणं भावेमाणे विहरित्तते छट्ठस्स वि य णं पारणयंसि
 कप्पति आयंविलं पडिग्गहित्तते णो चेव णं अणायं-
 विलं, तं पि य संसट्ठं णो चेव णं असंसट्ठं, तं पि य णं
 उज्झिय-धम्मियं नो चेव णं अणुज्झिय-धम्मियं, तं
 पि य जं अन्ने वहवे समण-माहण-अतिहि-किरण-वणी-
 मगा णावकंखति । अहासुहं देवाणुप्पिया । मा पडिवंधं
 करेह । तते णं से धन्ने अणगारे समणेणं भगवता

महा० अचभणुजाते समाणे हट्ट तुट्ट जावज्जीवाए छट्टं
छट्टेणं अणिक्वित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे
विहरति ।

ततो नु स धन्योऽनगारो यस्मिन्नेव दिवसे मुण्डो भूत्वा
यावत्प्रव्रजितस्तस्मिन्नेव दिवसे श्रमणं भगवन्त महावीर वन्दति,
नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य चैवमवादीत् “इच्छामि नु
भदन्त ! त्वयाभ्यनुज्ञातः सन् यावज्जीवं पष्ठ-पष्ठेनानिक्षिप्तेना-
चाम्ल परिगृहीतेन तपः-कर्मणात्मानं भावयन् विहर्तुम् । पष्ठ-
स्यापि च नु पारणके कल्प ऽआचाम्लं प्रतिग्रहीतु नो चैव
न्वनाचाम्लम्, तदपि च ससृष्ट नो चैव न्वसंसृष्टम्, तदपि
च नूज्झित-धर्मिक नो चैव न्वनुज्झित-धर्मिकम्, तदपि च यदन्न
वहव श्रमण-ब्राह्मणातिथि-रूपण-वनीपका नावकाइक्षन्ति”
“यथा-सुख देवानुप्रिय ! मा प्रतिबन्ध कुरु ।” ततो नु स धन्योऽ-
नगार. श्रमणेन भगवता महावीरेणाभ्यनुज्ञात सन् हट्टस्तुष्टो
यावज्जीव पष्ठ-पष्ठेनानिक्षिप्तेन तप कर्मणात्मानं भावयन् विहरति ।

पदार्थान्वय — ततो-दीक्षा के अनन्तर श-वाक्यालङ्कार के लिए हे से-
वह धन्ने-धन्य श्रमणगारे-अनगार ज चैव दिवम-जिसी दिन मुडे-मुण्डित
भविचा-हो पर जाव-यावन पव्रतिते-प्रव्रजित हुआ तचेव-उसी दिवम-ग्नि
ममणं-श्रमण भगव-भगवान महावीर-महावीर की वदति-चन्दना करता है
णममति २-नमस्कार करता है और चन्ना तथा नमस्कार करके एव-इस प्रकार
व०-फहने लगा भते !-हे भगवन ! श-पूर्वम् इच्छामि-मैं चाहता हू तु मेण-आप
की अ-भणुएणाते ममाणे-आज्ञा प्राप्त हो जाने पर जावज्जीवाए-जीवन पर्यन्त
छट्ट छट्टेण-पष्ठ पष्ठ तप से अणिक्वित्तेण-अनिक्षित (निगन्तर) आयमिलपरिग

हिएण-आचाम्ल ग्रहण-रूप तत्रोक्तमेण-तप कर्म से अप्पाण-अपनी आत्मा की भावेमाणे-भाजना करते हुए विहरित्तते-विचरु । य-और ए-पूर्ववत् छट्ठस्म वि-पष्ट-तप के भी पाणयमि-पारण करने म कृपति-योग्य है आयनिल-शुद्धौद-नादि पडिग्गहित्तते-ग्रहण करना सो चैव ए-न कि अणायनिल-अनाचाम्ल ग्रहण करना य-और त पि-वह भी ममट्ट-ससृष्ट (ररडे) हाथों से लिया हुआ ही लेना चाहिए अर्थात् उसी से लेना चाहिये जिसके हाथ उम भोजन से लिप्त हों सो चैव-न कि अससृष्ट-अससृष्ट हाथों से य-और त पि ए-वह भी उज्झिय घम्मिय-परित्याग रूप धर्म वाला हो सो चैव ए-न कि अणुज्झियघम्मिय-अपरित्याग रूप धर्म वाला य-और त पि-वह भी ऐसा अन्ने-अन्न हो ज-निसको उहवे-अनेर समण-उमण माहण-ब्राह्मण अतिहि-अतिवि किवण-कृपण-दरिद्र वणीमग-अन्य कई प्रकार के याचक णावकवृत्ति-न चाहते हों । यह सुनकर भ्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने कहा कि देवाणुप्पिया-हे देवानुप्रिय ! अहासुह-जिस प्रकार तुम्हें सुख हो इस शुभ कार्य में पडिग्ग-विलम्ब मा-मत करेह-करो । तते ए-इसके बाद से-उह धन्ने-धन्य अणगारे-अनगार समणेण-भ्रमण भगवता-भगवान् महावीरेण-महावीर की अभ्यणुच्चाते-आज्ञा प्राप्त कर हट्टुट्ट-आनन्दित और सन्तुष्ट हो कर जावज्जीवाए-जीवन भर छट्टु छट्टेण-पष्ट-पष्ट अणिकित्तेण-निरन्तर तपोकम्मेण-तप-कर्म से अप्पाण-अपनी आत्मा की भावेमाणे-भाजना करते हुए विहरति-विचरण करता है ।

मूलार्थ-—तपश्चात् वह धन्य अनगार जिम दिन मुण्डित हुआ, उसी दिन श्री भ्रमण भगवान् महावीर स्वामी की वन्दना और नमस्कार कर रहने लगा कि हे भगवन् ! आपकी आज्ञा से मैं जीवन पर्यन्त निरन्तर पष्ट पष्ट तप और आचाम्ल ग्रहण रूप तप से अपनी आत्मा की भावना करते हुए विचरना चाहता हू । और पष्ट (बले) के पारण के दिन भी शुद्धौदनादि ग्रहण करना ही मुझ को योग्य है न कि अनाचाम्ल आदि । वह भी पूर्ण-रूप से संसृष्ट अर्थात् भोजन में लिप्त हाथों से दिया हुआ ही न कि अससृष्ट हाथों से । मैं भी परित्याग रूप धर्म-न कि अपरित्याग रूप वाला भी । उग-ने-अनेर कृपण, अनिदि और वनीपक न-श्री कहा कि ' निम प्रकार

कार्य में विलम्ब करना ठीक नहीं । इसके अनन्तर वह धन्य कुमार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की आज्ञा से आनन्दित और मन्तुष्ट होकर निगन्तर पष्ठ पष्ठ तप-कर्म से जीवन भर अपनी आत्मा की भावना करते हुए विचरण करने लगा ।

टीका—इस सूत्र में धन्य कुमार की धर्म-विषयक रुचि विशेष रूप से उताई गई है । वह दीक्षा प्राप्त कर इस प्रकार धर्म में तल्लीन हो गया कि दीक्षा के दिन से ही उसकी प्रवृत्ति बड़े २ तप ग्रहण करने की ओर हो गई । उसने उसी दिन भगवान् से निवेदन किया कि हे भगवन् ! मैं आपकी आज्ञा से जीवन भर पष्ठ (वेले) तप का आयविल-पूर्वक पारण करूँ । उसकी इस तरह की धर्म-जिज्ञासा देख कर श्री भगवान् ने प्रतिपादन किया कि हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हें सुग्य हो उसी प्रकार करो । यह सुन कर धन्य अनगार ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार तप ग्रहण कर लिया ।

‘उज्झित-धर्मिक’ उसे कहते हैं, जिस अन्न को विशेषतया कोई नहीं चाहता हो । जैसे—“उज्झिय-धम्मिय ति, उज्झित—परित्याग स एव धर्म —पर्यायो यस्या-स्तीति उज्झित धर्म ” अर्थात् जिस अन्न का सर्वथा त्याग कर दिया गया हो, वह ‘उज्झित-धर्म’ होता है । आयजिल के पारण करने में ऐसा ही भोजन लेना चाहिए । ‘समणेस्यादि—श्रमणो निर्मन्थादि, ब्राह्मण —प्रतीत, अतिथि —भोजनकालोपरिस्थित प्राचूर्णक, कृपण —दरिद्र, बनीपक —याचकविशेष ।

अब सूत्रकार पहले सूत्र से ही सम्बन्ध रखते हुए कहते हैं ।—

तते णं से धण्णे अणगारे पढम-छट्ट-क्खमण-पारण-
गंसि पढमाए पोरसाए सज्जायं करेति । जहा गोत्तम-
सामी तहेव आपुच्छति । जाव जेणेव कायंदी णगरी
तेणेव उवागच्छति २ कायंदी णगरीए उच्च० जाव अड-
माणे आयंवलं जाव णावकंखंति । तते णं से धन्ने अण-
गारे ताए अवभुज्जताए पयययाए पग्गहियाए एसणाए
जति भत्तं लभति तो पाणं ण लभति, अह पाणं तो भत्तं

न लभति । तते णं से धन्ने अणगारे अदीणे, अविमणे,
 अकलुसे, अविसादी, अपरितंतजोगी, जयण-घडण-जोग-
 चरित्त अहापज्जत्तं समुदाणं पडिगाहेति२ काकदीओ
 णगरीतो पडिणिक्खमति, जहा गोतमे जाव पडिदंसेति ।
 तते णं से धन्ने अणगारे समणेणं भग० अवभणुन्नाते
 समाणे अमुच्छिते जाव अणज्झोववन्ने विलमिव पणग-
 भूतेणं अप्पाणेणं आहारं आहारेति२ संजमेण तवसा०
 विहरति ।

ततो नु स धन्योऽनगारः प्रथम षष्ठ-क्षमण-पारणके प्रथ-
 मायां पौरुष्या स्वाध्याय करोति । यथा गोतमस्वामी तथैवा-
 पृच्छति । यावद् येनैव काकन्दी नगरी तेनैवोपागच्छति, उपा-
 गत्य काकन्दीनगर्यामुच्च-नीचकुलेष्वटन्नाचाम्ल यावन्नावकाङ्-
 क्षन्ति ततो नु स धन्योऽनगारस्तयाभ्युद्यतया प्रयतया, प्रदत्तया,
 प्रगृहीतयैषणया यदि भक्त लभते पान न लभतेऽथ पान भक्त
 न लभते । ततो नु स धन्योऽनगारोऽदीनोऽविमनाऽकलुपोऽ-
 विपाद्यपरितन्तयोगी यतन-घटन-योग-चरित्रो यथा-पर्याप्त
 समुदान प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्य च काकन्द्या नगरीत प्रति-
 निष्कामति । यथा गोतमो यावत्प्रतिदर्शयति । ततो नु स धन्योऽ-
 नगार श्रमणेन भगवताभ्यनुज्ञात सन्नमूर्च्छितो यावदध्यु-
 पपन्नो विलमिव पन्नगभूतेनात्मनाहारमाहारयति, आहार्य
 सयमेन तपसात्मान भावयन् विहरति ।

पदार्थान्वय — तते ण-तत्पश्चात् से-उह धन्ने-धन्य अणुगारे-अनगार पढम-पहले छट्ठकस्समणपारणगमि-पष्ठ व्रत (वेले) के पारण मे पढमाए-पहली पोरसीए-पौरुगी मे सज्ज्जाय-स्वाध्याय करेति-करता है जहा-जैसे शीतमसामी-शोतम स्वामी ने त्तेवे-उसी प्रकार धन्य अनगार ने आणुञ्जति-पृष्ठा । जाव-यावत् आज्ञा प्राप्त कर जेणेव-जहा कायदी-काकन्दी णगरी-नगरी है तेणेव-उसी स्थान पर उवा० २-आता है और आरु कायदीणगरीए-काकन्दी नगरी मे उच्च०-ऊच, नीच और मध्यम कुलों म अडमाणे-भिक्षा के लिये फिरता हुआ आयविल-आचाम्ल के लिये जाव-यावत् णावकस्सति-जिस आहार को कोई नहीं चाहता उसी को ग्रहण करता है । तते ण-इसके बाद से-उह धन्ने-धन्य अणुगारे-अनगार ताए-उस आहार की अभ्युज्जताए-उद्यम वाली पयययाए-प्रवृष्ट यत्न वाली पयत्ताए-गुरुओं से आज्ञा पग्गहियाए-उत्साह के साथ स्वीकार की हुई एमणाए-एषणा-मभिति से गवेपणा करता हुआ जति-यदि भत्त-भात लभति-मिलता है पाण-पानी ण लभति-नहीं मिलता है अह-अथवा पाण-पानी मिलता है तो भत्त-भात न लभति-नहीं मिलता । तते-इसके अनन्तर ण-पूर्ववत् से-उह धन्ने-धन्य अणुगारे-अनगार अदीणो-दीनता से रहित अविमणो अशून्य अर्थात् प्रसन्नचित्त से अरुल्लसे-क्रोध आदि कलुषों से रहित अविमादी-विपाद-रहित अपग्गित्तजोगी-अप्रिश्रान्त अर्थात् निरन्तर समाधि युक्त जयण-प्राप्त योगों मे उद्यम करने वाला घडण-अप्राप्त योगों की प्राप्ति के लिये उद्यम करने वाला जोग-मन आदि इन्द्रियों का सयम करने वाला चरित्ते-जिसका चरित्र था अहापज्जत्त-यह जो कुछ भी पर्याप्त समुदाण-भिक्षा-वृत्ति से प्राप्त होता था उसको पडिगा-हेति २-ग्रहण करता है और ग्रहण कर काकदीओ-काकन्दी णगरीतो-नगरी से पडिणिकस्समति २-निरुलता है और फिर निकल कर जहा-जैसे शीतमे-शोतम स्वामी जाव-यावत् पडिदसेति २-श्री भगवान् महावीर स्वामी को भिक्षा वृत्ति से एकत्रित आहार दियाता है और दियाकर तते-इसके बाद ण-पूर्ववत् से-उह धन्ने-धन्य अणुगारे-अनगार समणोण-श्रमण भग०-भगवान् महावीर स्वामी की अ-भणुञ्जाते समाणे-आज्ञा प्राप्त होने अमुञ्छिते-मूर्च्छा से रहित जाव-यावत् उस भिक्षा वृत्ति से प्राप्त किये हुए भोजन को अणुज्जोववणो-राग और द्वेष से रहित होकर अर्थात् अनामत्त भाव से परणमभूतेण-सर्प के समान मुग्ध से

बिलमिव—बिल के समान अर्थात् जिस प्रकार सर्प केवल पार्श्व-भागों के सस्पर्श से बिल में घुस जाता है इसी प्रकार धन्य अनगार भी आहार—आहार को बिना आसक्ति के आहारेति २—मुह में डाल देता है और आहार कर फिर सजमेण—सयम और तवसा०—तप से अपनी आत्मा की भावना करते हुए विहरति—विचरण करता है ।

मूलार्थ—इसके अनन्तर वह धन्य अनगार प्रथम पष्ठ क्षमण के पारण के दिन पहली पौरुषी में स्वाध्याय करता है । फिर जिम प्रकार गोतम स्वामी आहार के लिये श्री श्रमण भगवान् की आज्ञा लेता था इसी प्रकार वह भी श्री भगवान् की आज्ञा प्राप्त कर काकुन्दी नगरी में जाकर ऊच, मध्य और नीच मय तरह के कुलों में आचाम्ल क लिए फिरता हुआ जहा दूमगे से उज्ज्वल मिलता था वही से ग्रहण करता था । उसको बड़े उद्यम से प्राप्त होने वाली, गुरुओं से श्रान्त उरमाह के माथ स्वीकार की हुई षण्णा-ममिति से युक्त भिक्षा में जहा भात मिला, वहा पानी नहीं मिला, तथा जहा पानी मिला, वहा भात नहीं मिला । इस पर भी वह धन्य अनगार रुमी दीनता, खेद, क्रोध आदि म्लुपता और विपाद प्रकृत नहीं करता था, प्रत्युत निरन्तर ममाधि-युक्त हो कर, प्राप्त योगों में अभ्यास करता हुआ और अप्राप्त योगों की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करत हुए चरित्र से जो कुछ भी भिक्षा वृत्ति से प्राप्त होता था उसको ग्रहण कर काकुन्दी नगरी से बाहर आ जाता था और बाहर जाकर जिम तरह गोतम स्वामी आहार श्री भगवान् को दिखाते थे उसी तरह दिखाता था । दिखाकर श्री भगवान् की आज्ञा से बिना आसक्ति के जिम प्रकार एक सर्प केवल पार्श्व भागों के स्पर्श से बिल में घुस जाता है इसी प्रकार वह भी बिना किसी विशेष इच्छा के (केवल शरीर-रक्षा के लिये) आहार ग्रहण करता था और आहार ग्रहण करने के अनन्तर फिर मयम और तप से अपनी आत्मा की भावना करते हुए विचरण करता था ।

टीका— इस सूत्र में धन्य अनगार की प्रतिज्ञा पालन करने की दृढता का वर्णन किया गया है । प्रतिज्ञा ग्रहण करने के अनन्तर वह जन भिक्षा के लिये नगरों में गया तो उसको वही भात मिला तो पानी नहीं मिला, जहा भात मिला था वहा पानी नहीं । किन्तु इतना होने पर भी उसने धैर्य का त्याग कर

दीनता नहीं दिग्गई । वह अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ रहा और उम्मीके अनुमाग आत्मा को दृढ और निश्चल बनाकर सयम-मार्ग से प्रसन्न-चित्त होकर विचरता रहा । भिक्षा से उमको जो कुछ भी आहार प्राप्त होता था उमको वह इतनी ऋजुता से खाता था जैसे एक साप विल में घुसता है अर्थात् वह भोजन को स्वाद के लिये न खाता था, प्रत्युत सयम के लिये शरीर रक्षा ही उमको भोजन से अभीष्ट थी ।

‘विल पन्नगभूतेन’ का वृत्तिमाग यह अर्थ करते हैं — “यथा विले पन्नग पार्श्वसस्पर्शनात्मान प्रवेशयति तथायमाहाग मुग्धेन सस्पृशन्निय रगप्रिरेहितत्वादाहा रयति” अर्थात् इम प्रकार विना किसी आत्मिकि के आहार कर फिर सयम के योगे मे अपनी आत्मा को नृढ करता था इतना ही नहीं बल्कि अप्राप्त ज्ञान आदि की प्राप्ति के लिये भी मदा प्रयत्नशील रहता था ।

अब सूत्रकार धन्य अनगार के पठन के विषय मे कहते हैं —

समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ काकंदीए णगरीतो सहसंबवणातो उज्जाणातो पडिणिक्खमति २ वहिया जणवय-विहारं विहरति । तते णं से धन्ने अणगारे समणस्स भ० महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिते सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जति, संजमेणं तवसा अण्णणं भावेमाणे विहरति । तते णं से धन्ने अणगारे तेणं ओरालेणं जहा खंदतो जाव सुहुय० चिट्ठति ।

श्रमणो भगवान् महावीरोऽन्यदा कदाचित् काकन्द्या नगरीत सहस्राम्रवनादुद्यानात्प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य वहिर्जनपद-विहारं विहरति । ततो नु स धन्योऽनगार. श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य तथारूपाणा स्थविराणामन्तिके

सामायिकादिकान्येकादशाङ्गान्यधीते सयमेन तपसात्मान
भावन्यन् विहरति । ततो नु स धन्योऽनगारस्तेनोदारेण यथा
स्कन्दको यावत्सुहृताशन इव तिष्ठति ।

पदार्थान्वय — श्रमणे—श्रमण भगवन्—भगवान् महावीर—महावीर अण्णया—
अन्यथा क्रयाड—क्रयाचित् काक्रीए—काक्रीणी शगरीतो—नगरी से सहस्रप्रवणतो—
सहस्राश्रयन उजाणातो—उगान से पडिणिकममति—निकलते हैं और निकल कर
ग्रहिया—बाहर जणवयविहार—जनपद-विहार के लिये विहरति—विचरण करते हैं ।
तते—इसके अनन्तर श—वाक्यालङ्कार के लिए है से—उह धन्ने—धन्य अण्णगारे—
अनगार समणस्म भ०—श्रमण भगवान् महावीरस्म—महावीर के तहारूवाण—तथारूप
थेगण—स्थविरा के अतिते—पास सामाह्यमाडयाड—सामायिक आणि एकारम—एका-
दश अगाड—अङ्गो को अहिजति—पढता है । सजमेण—सयम और तवसा—तप से
अण्णया—अपनी आत्मा की भावेमाणे—भावना करते हुए विहरति—विचरण करता
है तते श—तत्पश्चान् से—वह धन्ने—धन्य अण्णगारे—अनगार तेण—उस ओरालेण—
उत्तर तप से जहा—जैसे सुदतो—स्कन्दक जाव—यावत् सुहृय०—हवन की अग्नि के
समान तप से जाअपत्यमान होकर चिद्धति—रहता है ।

मूलार्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अन्यथा किसी समय वास्वन्दी
नगरी के सहस्राश्रयन उद्यान से निकल कर बाहर जनपद-विहार के लिए विचरने
लगे । (इसी समय) वह धन्य अनगार भगवान् महावीर के तथारूप स्थविरा के पास
सामायिकादि एकादश अङ्ग शास्त्रों का अध्ययन करने लगा । वह सयम और तप
से अपने आत्मा की भावना करते हुए विचरता था । तदनु वह धन्य अनगार
स्कन्दक सन्यासी के समान उम उदार तप के प्रभाव से हवन की अग्नि के समान
प्रकाशमान हुए से विराजमान हुआ ।

टीका—यह सूत्र स्पष्ट ही है । सब त्रिपय सुगमतया मूलार्थ से ही ज्ञात
हो सकता है । उल्लेखनीय केवल इतना है कि यद्यपि तप और सयम की कसौटी
पर चढ़ कर धन्य अनगार का शरीर अवश्य कृश हो गया था, किन्तु उससे
उमका आत्मा एक अलौकिक बल प्राप्त कर रहा था, जिसके कारण उसके मुख
का प्रतिदिन बढ़ता हुआ तेज हवन की अग्नि के समान देदीप्यमान हो रहा था ।

अत्र सूत्रकार धन्य अनगार के तप के साथ उनके शरीर का भी वर्णन करते हैं —

धन्नस्स णं अणगारस्स पादाणं अयमेयारूवे तव-
रूव-लावण्णे होत्था, से जहाणामते सुक्क-छल्लीति वा कट्ट-
पाउयाति वा जरग्ग-ओवाहणाति वा, एवामेव धन्नस्स
अणगारस्स पाया सुक्का णिम्मंसा अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए
पण्णायंति णो चेव णं मंस-सोणियत्ताए । धन्नस्स णं
अणगारस्स पायंगुलियाणं अयमेयारूवे० से जहाणामते
कल-संगलियाति वा मुग्ग-सं० वा मास-संगलियाति
वा तरुणिया छिन्ना उण्हे दिन्ना सुक्का समाणी मिलाय-
माणी२ चिट्ठति । एवामेव धन्नस्स पायंगुलियातो
सुक्कातो जाव सोणियत्ताते ।

धन्यस्य न्वनगारस्य पादयोरिदमेतद्रूप तपो-लावण्यम-
भूदथ यथानामका शुष्क-छल्लीति वा काष्ठ-पादुकेति वा
जरत्कोपानदिति वा, एवमेव धन्यस्यानगारस्य पादौ शुष्कौ
निर्मासावस्थि-चर्म-शिरावत्तया प्रज्ञायते नो चैव तु मास-शोणि-
तवत्तया । धन्यस्य न्वनगारस्य पादाङ्गुलीनामिदमेतद्रूप
लावण्यमभूदथ यथानामका कलाय-संगलिकेति वा मुद्ग-सग-
लिकेति वा माप-संगलिकेति वा तरुणा छिन्नोष्णे दत्ता शुष्का
सती म्लायन्ती (म्लानिमुपगता) तिष्ठति, एवमेव धन्यस्यान-
गारस्य पादाङ्गुलिका शुष्का यावत् शोणितवत्तया (प्रज्ञायन्ते) ।

पदार्थान्वय — धन्वस्म-धन्यश्च-पूर्वतत् अणुगारस्म-अनगार के पादाण-
 पेंगों का अयमेयारूवे-इस प्रकार का तवरूवलावन्ने-तप-जनित सुन्दरना होत्या-
 हुई से-जैसे जहाणामते-यथानामक सुकृच्छलीति वा-सूखी हुई वृष की छाल अथवा
 कट्टपाउयाति वा-लकड़ी की खडाऊ अथवा जरगग्रयोवाहगाति वा-जीर्ण उपानत्
 (जूती) हो एवामेव-इसी तरह धन्वस्म-धन्य अणुगारस्म-अनगार के पाया-पंग
 सुफ्ना-सूखे हुए शिम्ममा-माम रहित अट्टिचम्मद्विगताए-अस्थि, चर्म और शिराओं
 के कारण पण्णायति-पहचाने जाते हैं शो चेव-न कि मममोणियत्ताए-मास और
 रुधिर के कारण । धन्वस्म-धन्य अणुगारस्म-अनगार की पायागुलियाण-पेंगों
 की अङ्गुलियों का अयमेयारूवे-इस प्रकार का तप जनित लावण्य हुआ से-जैसे
 जहाणामते-यथानामक रुलसगलियाति वा-मलाय-धान्य विशेष की फलिया
 अथवा मुग्ग-म-मूग की फलिया अथवा मासमगलियाति-माप की फलिया वा-समु-
 चय के लिए है तरुणिया-नो कोमल ही छिन्ना-तोड़ कर उण्हे-गर्मी में दिन्ना-दी हुई
 अर्थात् रसी हुई सुकासमाणी-सूख कर मिलायमाणी-म्लान हो रही चिद्धति-
 हो । एवामेव-इसी प्रकार धन्वस्म-धन्य की पायगुलियातो-पेंगों की अङ्गुलिया
 सुफ्नातो-सूखी हुई जाव-यावत् सोणियत्ताते-मास और रुधिर से नहीं पहचानी
 जाती प्रत्युत केवल अस्थि, मास और शिराओं के कारण ही पहचानी जाती हैं ।

मूलाध-धन्य अनगार के पेंगों का तप से ऐसा लावण्य हो गया जैसे
 सूखी हुई वृष की छाल, लकड़ी की खडाऊ या जीर्ण जूता हो । इसी प्रकार
 धन्य अनगार के पैर केवल हड्डी, चमड़ा और नमों से ही पहचाने जाते थे, न कि
 मास और रुधिर से । धन्य अनगार की पेंगों की अङ्गुलियों का ऐसा तप-जनित
 लावण्य हुआ जैसा कलाय धान्य की फलिया, मूग की फलिया अथवा माप
 (उदद) की फलिया कोमल ही तोड़ कर धूप में डाली हुई गुरभा जाती हैं ।
 धन्य अनगार की अङ्गुलिया भी इतनी गुरभा गई थीं कि उन में केवल हड्डी,
 नम और चमड़ा ही नजर आता था, मास और रुधिर नहीं ।

टीका—इम सूत्र में बताया गया है कि तप के कारण धन्य अनगार की
 शारीरिक दशा में कितना परिवर्तन हो गया । तप करने से उनमें दोनों चरण इस
 प्रकार सूख गये थे जैसे सूखी हुई वृष की छाल, लकड़ी की खडाऊ अथवा पुरानी

सूखी हुई जूती हो । उनके पैरों में मास और रुधिर नाममात्र के लिए भी अवशिष्ट नहीं रह गया था, किन्तु केवल हड्डी, चमड़ा और नसे ही देग्ने में आते थे । पैरों की अगुलियों की भी यही नशा दी । वे भी कलाय, भूग या माप की उन अगुलियों के समान जो कोमल से तोड़ कर बूप में डाल दी गई हों—मुरझा गई थी । उन में भी मास और रुधिर नहीं रह गया था ।

इस प्रकार इन उपमाओं से धन्य अनगार के शरीर का वर्णन इस सूत्र में दिया गया है ।

अथ सूत्रकार इमी त्रिषय से सम्बन्ध रखते हुए कहते हैं —

धन्नस्स जंघाणं अयमेयारूवे० से जहा० काक-जंघाति वा कंक-जंघाति वा ढेणियालिया-जंघाति वा जाव णो सोणियत्ताए, धन्नस्स जाणूणं अयमेयारूवे० से जहा कालि-पोरेति वा मयूर-पोरेति वा ढेणियालिया-पोरेति वा, एवं जाव नो सोणियत्ताए । धण्णस्स ऊरुस्स० जहानामते साम-करील्लेति वा बोरी-करील्लेति वा सल्लति० सामली० तरुणिते उण्हे जाव चिट्ठति, एवामेव धन्नस्स ऊरू जाव सोणियत्ताए ।

धन्यस्य नु जङ्घयोरिदमेतद्रूप तपो-लावण्यमभूदथ यथानामका काक-जङ्घेति वा कङ्क-जङ्घेति वा ढेणिकालिक-जङ्घेति वा यावन्नो शोणितवत्तया । धन्यस्य जान्वोरिदमेतद्रूप तपो-लावण्यमभूदथ यथानामकं कालि-पर्वेति वा मयूर-पर्वेति वा ढेलिकालिका-पर्वेति वा, एवं यावच्छोणितवत्तया । धन्यस्योर्वोरिदमेतद्रूप तपो-लावण्यमभूदथ यथानामक उयाम-करीरामिति वा बदरी-करीरामिति वा शल्यकी-करीरामिति वा

शाल्मली-करीरमिति वा तरुणकमुष्णे यावत्तिष्ठति, एवमेव धन्य-
स्योरु यावच्छोणितवत्तया ।

पदार्थान्वय — धन्स्म-धन्य अनगार की जघाण-जघ्नाओं का अग्रमेया-
रूवे-इस प्रकार का तप जनित लावण्य हुआ से जहा०-जैसे काकजघाति वा-काक-जघ्ना
हो ककजघाति वा-अथवा कक पक्षी की जघ्नाएँ हैं देखियालियाजघाति वा-देखिन
पक्षी की जघ्नाएँ हो, इसी प्रकार धन्य अनगार की जघ्नाएँ भी जाव-यावत् सोणिय-
त्ताए-मास और रुधिर से नहीं पहचानी जाती थीं, धन्स्म-धन्य अनगार के
जाणूण-जानुओं का अग्रमेयारूवे०-इस प्रकार का तप-जनित लावण्य हुआ से जहा०-
जैसे कालि पोरेति वा-कालि-वनस्पति विशेष का पर्व (मन्धि-स्थान) हो मयूर-पोरेति
वा-मयूर के पर्व होते हैं देखियालिया-पोरेति वा-देखिन (ढक) पक्षी के पर्व होते
हैं वा-सर्वत्र समुच्चयार्थक है एव-इसी प्रकार जाव-यावत् धन्य अनगार के जानु
मोणियत्ताए-माम और रुधिर से नहीं पहचाने जाते थे । अर्थात् उनमें माम और
रुध्र अशिश्र नहीं था धणस्म-धन्य अनगार के ऊरुस्म-ऊरुआ का इस प्रकार का
तप-जनित लावण्य हुआ जहानामते-जिस प्रकार मामकरील्लेति वा-प्रियशु वृक्ष की
कॉपल प्रोरीकरील्लेति वा-प्ररी-पेर की कॉपल सल्लति०-शल्य की वृक्ष की कॉपल
मामली०-शाल्मली वृक्ष की कॉपल तरुणिते-मोमल ही तोड़ कर उएहे-गर्मी में मुरझाई
हुड जाव-यावत् चिट्टति रहती है एवामेव-ठीक इसी प्रकार धन्स्म-धन्य अनगार
के ऊरु-ऊर जाव-यावत् सोणियत्ताए-माम और रुधिर से नहीं पहचाने जाते ।

मूलार्थ—धन्य अनगार की जघ्नाएँ तप के कारण इस प्रकार निर्मास
हो गईं जैसे काक (कौब) की, कक पक्षी की और देखिक (ढक) पक्षी की
जघ्नाएँ होती हैं । वे सब कर इस तरह की हो गईं कि माम और रुधिर देखने
को भी नहीं रह गया । धन्य अनगार के जानु तप से इस प्रकार सुशोभित हुए
जैसे कालि नामक वनस्पति, मयूर और देखिक पक्षी के पर्व (गाठ) होते हैं ।
वे भी मास और रुधिर से नहीं पहचाने जाते थे । धन्य अनगार के ऊरुओं की
भी तप से इतनी मुदरता हो गईं जैसे प्रियशु, घदरी, शल्यकी और शाल्मली
वृक्षों की कोमल २ कॉपल तोड़ कर धूप में रखी हुईं मुग्धा जाती हैं । ठीक इस
तरह धन्य अनगार के ऊरु भी माम और रुधिर से रहित हो कर मुग्धा गये थे ।

टीका—इस सूत्र में धन्य जनगार की जह्वा, जानु और उन्धों का वर्णन किया गया है । तप के प्रभाव से धन्य जनगार की जह्वा मास और रधिर के अभाव से ऐसी प्रतीत होती थी मानो तक जह्वा नाम के वनस्पति की—जो स्वभावतः शुष्क होती है—नाल हो । अथवा यों कहिए कि वे कौवे की जह्वाओं के समान ही निर्मांम हो गई थी । अथवा उनकी उपमा हम कङ्क और ढक पक्षियों की जह्वाओं से भी दे सकते हैं । इसी प्रकार उनके जानु भी उक्त काक-जह्वा वनस्पति की गाठ के समान अथवा मयूर और ढक पक्षियों के मन्धि-स्थानों के समान शुष्क हो गये थे । दोनों उक्त भाग और रधिर के अभाव से सूत्र कर इस तरह सुरझा गये थे जैसे प्रियङ्गु, बदरी, कर्कन्धू, शल्यकी या शाल्मली वनस्पतियों के कोमल २ कोपल तोड़कर धूप में रखने से सुरझा जाते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि धन्य जनगार इस प्रकार वर्म की ओर आकर्षित हुए कि उन्होंने उसी पर अपना सर्वस्व निछावर कर दिया । यहाँ तक कि उनको शरीर का मोह भी लेश मात्र नहीं रहा । उन्होंने कठोर से कठोर तप करने प्रारम्भ किये । जिसका फल यह हुआ कि उनके किसी अङ्ग में भी मास और रधिर अवशिष्ट नहीं रहा । सर्वत्र केवल अस्थि, चर्म और नसा जाल ही देखने में आता था ।

अत्र सूत्रकार धन्य जनगार के कटि आदि अङ्गों का वर्णन करते हैं —

धन्नस्स कडि-पत्तस्स इमेया-रूवे० से जहानामए
उट्ट-पादेति वा जरग्ग-पादेति वा जाव सोणियत्ताए, धन्न-
स्स उदर-भायणस्स इमे० से जहा० सुक्क-टिएति वा भज्ज-
णय-कभल्लेति वा कट्ट-कोलंवाएति वा, एवामेव उदरं
सुक्कं । धन्न० पांसुलिय-कडयाणं इमे० से जहा० थासया-
वलीति वा पाणावलीति वा मुंडावलीति वा । धन्नस्स
पिट्ठि-करंडयाणं अयमेयारूवे० से जहा० कन्नावलीति वा
गोलावलीति वा चट्टयावलीति वा । एवामेव० धन्नस्स

उर-कडयस्स अय० से जहा० चित्तकटरोति वा वियण-
पत्तेति वा तालियंट-पत्तेति वा, एवामेव० ।

धन्यस्य कटि-पत्रस्येदमेतद्रूपं तपो-लावण्यमभूदथ
यथानामक उष्ट्र-पाद इति वा जरद्भव-पाद इति वा यावच्छोणित-
वत्तया । धन्यस्योदर-भाजनस्येदम्० अथ यथानामक शुष्क-दृति-
रिति वा भर्जन-कमलमिति वा काष्ठ-कोलम्व इति वा, एवमेवो-
दर शुष्कम्० । धन्यस्य पाशुलिका-कटकयोरिदम्० अथ यथा-
नामका स्थासिकावलीति वा पाणावलीति वा मुण्डावलीति वा
धन्यस्य पृष्टि-करण्डाणामिदमेतद्० अथ यथानामका कर्णावलीति
वा गोलकावलीति वा वर्त्तकावलीति वा । एवमेव धन्यस्योर-
कटकस्येदम्० अथ यथानामक ? चित्तकटरमिति वा व्यजनक-
पत्रमिति वा ताल-वृन्त-पत्रमिति वा, एवमेव० ।

पदार्थान्वय — धन्नस्म—धन्य अनगार के कडिपत्तम्—रुटि-पट्ट का इमे-
या रूवे०—इस प्रकार का तप जनित लावण्य हुआ से जहानामए—जैसे—उष्ट्रपादेति
वा—उष्ट्र का पैर होता है अथवा जरग्गपादेति वा—बूढे बैल का पैर होता है इसी प्रकार
जाव—यावत सोणियत्ताए—माम और रुधिर की सत्ता से नहीं पहचाने जाता वा ।
धन्नस्म—धन्य अनगार के उदरभाजयस्स—उदर-भाजन का इमे०—इस प्रकार का तप-
जनित लावण्य हुआ से जहा०—जैसे सुकृदिएति वा—सूखी हुई मशक होती है अथवा
भज्जणयकमल्लेति वा—चने आदि भूने का भाजन होता है अथवा रुद्धकोलन
एति वा—काष्ठ का कोलम्व (पात्र विशेष) होता है एवामेव—इसी प्रकार उदर—उदर
सुष्क—सूख गया वा, धन्न०—धन्य अनगार के पासुलियकडाण—पाशुर्ग भाग की
अस्थियों के पटकों का इमे०—इस प्रकार की सुदग्ता हुई से जहा०—जैसे वापया-
वलीति—दपणा (आरसी) की पडिक्त होती है वा—अथवा पाणावलीति वा—पाण-
भाजन विशेष की पडिक्त होती है अथवा मुण्डावलीति वा—स्थाणुओं की पडिक्त होती है

इसी प्रकार वन्य अनगार की पासुलिण भी हो गई थीं । धन्स्म-धन्य अनगार के पिड्डिकरडयाण-पीठ की हड्डी के उन्नत प्रदेशों की त्रयमेयारूवे०-इस प्रकार नी तप-जनित सुन्दरता हो गई से जहा०-जैसे कन्नावलीति वा-कान के भूपणों की पङ्क्ति होती है गोलावलीति वा-गोलरु-वर्तुलाकार पापाण विशेषों की पङ्क्ति होती है वड्यावलीति वा-वर्तक-लाग आदि के बने हुए वन्चों के त्रिलौनों की पङ्क्ति होती है एवामेव०-इसी प्रकार तप के कारण धन्य अनगार के पृष्ठ प्रदेशों भी सुन्दरता हो गई थी । धन्स्म-धन्य अनगार के उररुडयस्स-उर-(उभ-स्थल)कटव की श्रय०-इस प्रकार की सुन्दरता हो गई से जहा०-जैसे चित्तकड्ड-रेलि वा-गौ के चरने के कुण्ड का अधोभाग होता है अथवा वियणपत्तेति वा-वास आदि के पत्तों का पहा होता है अथवा तालियटपत्तेति वा-ताड के पत्तों का पहा होता है एवामेव०-इसी प्रकार धन्य अनगार का उभ.स्थल भी सूर्य गया था ।

मूलार्थ-धन्य अनगार के कटि-पत्र का इस प्रकार का तप-जनित लावण्य हुआ जैसे ऊँट का पैर हो, बूटे पैल का पैर हो । उसमें माम और रुधिर का सर्वथा अभाव था । धन्य अनगार का उदर भाजन इतना सुन्दराकार हो गया था जैसे सूखी मशक हो, चने आदि भूजने का भाण्ट हो अथवा लकड़ी का, बीच में मुड़ा हुआ, पात्र हो । उमका उदर भी ठीक इसी प्रकार सूख गया था । धन्य अनगार की पार्श्व की अस्थिया तप से इतनी सुन्दर हो गई थी जैसे दर्पणों की पक्ति हो, पाण नामक पात्रों की पक्ति हो अथवा स्थाणुधों की पक्ति हो । धन्य अनगार के पृष्ठ-प्रदेश के उन्नत भाग इतने सुन्दर हो गये थे जैसे कान के भूपणों की पक्ति हो, गोलरु-वर्तुलाकार पापाणों की पक्ति हो अथवा वर्तक-लाग आदि के बने हुए वन्चों के त्रिलौनों की पक्ति हो । इसी प्रकार धन्य अनगार के पृष्ठ-प्रदेश भी सूर्य कर निर्गम हो गये थे । धन्य अनगार के उर(वक्षःस्थल)-कटका ही इतनी सुन्दरता हो गई थी जैसे गौ के चरने के कुण्ड का अधोभाग होता है, माम आदि का पहा होता है अथवा ताड के पत्तों का पहा होता है । ठीक इसी प्रकार उमका वक्षःस्थल भी सूर्य कर माम और रुधिर से रहित हो गया था ।

टीका-इस सूत्र में क्रम से धन्य अनगार के कटि, उदर, पासुलिका, पृष्ठ प्रदेश और उभ.स्थल का उपमा द्वारा वर्णन किया गया है । उमका कटि-प्रदेश तप के कारण माम और रुधिर से रहित हो कर ऐसा प्रतीत होता था जैसे ऊँट

या वृद्धे वैल न सुख हो । इसी प्रकार उनका उदर भी सूख गया था । उमकी सूख कर ऐसी हालत हो गई थी जैसी सूखी मशर, चने आदि भूनने के पात्र अथवा कोल्म्व नामक पात्र विशेष की होती है । शुष्क आदि शब्दों की वृत्तिभार निम्न-लिखित व्याख्या करते हैं —

शुष्क — शोषमुपगतो हति — चर्ममयजलभाजनविशेष । चणनीना भजनम्—पारुविशेषापादान तदर्थं यत्कमलम्—रूपाल घटादिकर्पर तत्तथा । शरित् शास्त्रानामयनतमम भाजनं वा कोल्म्व उच्यते काष्ठस्य कोल्म्व इव काष्ठकोल्म्व, परिदृश्यमानावनतहृत्प्यास्थित्वात् ।

कहने का तात्पर्य यह है कि धन्य अनगार का उदर भी सूखकर उक्त वस्तुओं के समान बीच में खोखला जैसा प्रतीत होता था । इसी प्रकार उनकी पामुल्लिए भी सूखकर काटा हो गई थी । उनको इस तरह गिना जा सकता था जैसे—द्रव्य की पक्ति हो या गाय आदि पशुओं के चरने के पात्रों की पक्ति अथवा उनके बाधने के कीलों की पक्ति हो । उनमें मास और रुधिर देगने को भी न था । यही दशा पृष्ठ प्रदेशा की भी थी । उनमें भी मास और रुधिर नहीं रह गया था और ऐसे प्रतीत होते थे मानो मुकुटा की, पापाण के गोलकों की अथवा लास आदि से बने हुए बच्चों के खिलौनों की पक्ति खड़ी की हुई हो । उस तप के कारण धन्य अनगार के वक्ष स्थल (छाती) में भी परिवर्तन हो गया था । उससे भी मास और रुधिर सूख गया था और पमलियों की पक्ति ऐसी दिग्गई द रही थी मानो वे किलिख आदि के खण्ड हों अथवा यह घास या ताड़ के पत्तों का बना हुआ पहा हो ।

इन सब अवयवों का वर्णन, जैसा पहले कहा जा चुका है, उपमालङ्कार से किया गया है । इससे एक तो स्वभावतः वर्णन में चारता आगई है, दूसरे में पढ़ने वालों को वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने में अत्यन्त सुगमता प्राप्त होती है । जो विषय उदाहरण द कर शिष्यों के सामने रखा जाता है, उसको अत्यल्प-बुद्धि भी बिना किसी विशेष परिश्रम के समझ जाता है ।

हा, यह ध्यान रखने योग्य है कि धन्य अनगार का शरीर यद्यपि सूख कर काटा हो गया था किन्तु उनकी आत्मिक शक्ति दिन दिन बढ़ती चली जा रही थी ।

अब सूत्रकार धन्य अनगार के शेष अवयवों का वर्णन करते हैं —

धन्नस्स वाहाणं० से जहानामते समि-संगलियाति वा वाहाया-संगलियाति वा अगत्थिय-संगलियाति वा एवामेव० । धन्नस्स हत्थाणं० से जहा० सुक्क-छगणियाति वा वड-पत्तेति वा पलास-पत्तेति वा एवामेव० । धन्नस्स हत्थंगुलियाणं० से जहा० कलाय-संगलियाति वा मुग्ग० मास० तरुणिया छिन्ना आयवे दिन्ना सुक्का समाणी एवामेव० ।

धन्यस्य वाहोः० अथ यथानामका शमी-सङ्गलिकेति वा, वाहाया-सङ्गलिकेति वा अगस्तिक-सङ्गलिकेति वा, एवमेव० । धन्यस्य हस्तयोः० अथ यथानामका शुष्क-छगणिकेति वा वट-पत्रमिति वा पलाश-पत्रमिति वा, एवमेव० । धन्यस्य हस्ताङ्गुलिकानाम्० अथ यथानामका कलाय-सङ्गलिकेति वा मुद्ग० माप० तरुणिका छिन्नातपे दत्ता सती, एवमेव० ।

पदार्थान्वय — धन्नस्स—धन्य अनगर की ग्राहाण०—भुजाओं की तप से इतनी सुन्दरता हुई से जहानामते—जैसे ममिमगलियाति वा—शमी वृक्ष की फली अथवा ग्राहायासंगलियाति वा—वाहाया—एक वृक्ष विशेष की फली अथवा अगत्थियसंगलियाति वा—अगस्तिक नामक वृक्ष की फली सूखकर हो जाती है एवामेव—इसी प्रकार उनकी भुजाण भी मास और रुधिर के अभाव से सूख गई थीं । धन्नस्स—धन्य अनगर के हत्थाण०—हाथों की सुन्दरता इस प्रकार हो गई थी से जहा०—जैसे सुक्क छगणियाति वा—सूया गोबर होता है अथवा वडपत्तेति वा—वट वृक्ष के सूखे हुए पत्ते होते हैं अथवा पलामपत्तेति वा—पलाश के सूखे हुए पत्ते होते हैं एवामेव०—उनके हाथों में भी मास और रुधिर सूख गया था । धन्नस्स—धन्य अनगर की हत्थंगुलियाण०—हाथ की अंगुलियों का तप से ऐसा लाजण्य हुआ से जहा०—

जैसे कलायसगलियाति वा—कलाय की फलिया अथवा मूगम०—मूग की फलिया माम०—माम की फलिया जो तरुणिया—कोमल २ छिन्ना—तोड़ कर आयवे—धूप में दिन्ना—रसी हुई सुखा समाखी—सूय कर मुरझा जाती हैं एवामेव—इसी प्रकार धन्य अनगार की अगुलिया भी रन्धिर और माम से गहित हो कर सूय गई थीं । उन में केवल अस्थि और चर्म ही अपशिष्ट रह गया था ।

मूलार्थ—मास और रुधिर के अभाव से धन्य अनगार की भुजाए इम प्रकार हो गई थीं जैसे शमी, बाहाय और अगस्तिक वृक्ष की सूखी हुई फलियां हो । धन्य अनगार के हाथ सूय कर इम प्रकार हो गये थे जैसे सूखा गोबर होता है अथवा वट और पलाश के सूखे पत्ते होते हैं । उम तप के प्रभाव से धन्य अनगार की अगुलिया भी सूय गई थीं और ऐसी प्रतीत होती थीं मानो कलाय, मूग अथवा माप (उड़द) की फलिया जो कोमल २ तोड़ कर धूप में रसी हुई हो । जिस प्रकार ये मुरझा जाती हैं इसी प्रकार उनकी अगुलिया भी माम और रुधिर के अभाव से मुरझा कर सूय गई थीं ।

टीका—इस सूत्र में धन्य अनगार की भुजा, हाथ और हाथ की अगुलियों का उपमा अलङ्कार से वर्णन किया गया है । उनकी भुजाए और अङ्गों के ममान तप के कारण सूय गई थीं और ऐसी दिग्माई देती थीं जैसी शमी, अगस्तिक अथवा बाहाय वृक्षों की सूखी हुई फलिया होती हैं ।

अगस्तिक और बाहाय का ठीक २ निश्चय नहीं हो सका है कि ये त्रिन् वृक्षों की और किस देश में प्रचलित सज्ञा है । वृत्तिभार ने भी इनके लिए केवल वृक्ष विशेष ही लिखा है । सम्भवत उस समय किसी प्रान्त में ये नाम प्रचलित रहे हों ।

यही दशा धन्य के हाथों की भी थी । उनसे भी मास और रुधिर सूय गया था तथा वे इस तरह दिग्माई देते थे जैसा सूखा गोबर होता है अथवा सूखे हुए वट और पलाश के पत्ते होते हैं । हाथ की अगुलियों में भी विचित्र परिवर्तन हो गया था । जो अगुलिया कभी रक्त और माम से परिपूर्ण थीं, वे आज सूय कर एक निराली शोभा धारण कर रही थीं । सूय कर उनकी यह हालत हो गई थी जैसे एन कलाय, मूग अथवा माप (उड़द) की फली की—जिसको कोमल ही तोड़

कर धूप में सुगन्ध दिया हो—दर्शा होती है । वह पहले का माम और रुधिर तो उनमें देखने को भी शेष नहीं रह गया था । यदि उनको कोई पहचान मन्ता था तो कण्ठ अस्थि और चर्म से जो उनमें अवशिष्ट रह गये थे ।

बाहु शब्द यद्यपि उक्तरान्त है तथापि निम्न लिखित सूत्र से उमको आकारान्त आदेश हो जाता है । अतः सूत्र में आया हुआ 'वाहाण' पद प्राकृत व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध है । किसी को अन्यथा भ्रान्ति नहीं होनी चाहिए । सूत्र यह है —

वाहोरान्त ॥८॥१३६॥ बाहुशब्दस्य स्त्रियामाश्रयान्तादेशो भवति । गाहाए जेण धरिओ एक्काए ॥ स्त्रियामित्येव । वामे अगे गाहू ॥

इस प्रकरण में तप की ही महिमा विशेष रूप से वर्णन की गई है । साथ ही उपमा अलङ्कार से शरीर के सौन्दर्य का भी वर्णन किया गया है । यद्यपि सामान्यतः ज्ञान, दर्शन और चारित्र्य तीनों को मोक्ष के प्रति कारणता है तथापि चारित्र्य की प्रधानता दिखाने के लिये उसका पृथक् वर्णन किया गया है ।

अब सूत्रकार धन्य अनगार की प्रीचा, हनु, ओष्ठ और जिह्वा का वर्णन करते हैं —

धन्नस्स गीवाए० से जहा० करग-गीवाति वा कुंडि-
या-गीवाति वा उच्चट्टवणतेति वा एवामेव० । धन्नस्स णं
हणुआए से जहा० लाउय-फलेति वा हकुव-फलेति वा
अंव-गट्टियाति वा एवामेव० । धन्नस्स उट्टाणं से जहा०
सुक-जलोयाति वा सिलेस-गुलियाति वा अलत्तग-गुलिया-
ति वा एवामेव० । धन्नस्स जिवभाए० से जहा० वड-पत्तेति
वा पलास-पत्तेति वा साग-पत्तेति वा एवामेव० ।

धन्यस्य ग्रीवाया० अथ यथानामका करक-ग्रीवेति वा
कुण्डिका-ग्रीवेति बोच्चस्थापनक इति वा, एवामेव० । धन्यस्य

हनो ० अथ यथानामकमलावु-फलमिति वा हकुव-फलमिति वा आम्रगुटिकेति वा, एवमेव ० । धन्यस्योष्ठयो ० अथ यथानामका शुष्क-जलौकेति वा, श्लेष्म-गुटिकेति वाक्तक-गुटिकेति वा, एवमेव ० । धन्यस्य जिह्वाया ० अथ यथानामक वटपत्रमिति वा पलाश-पत्रमिति वा शाक-पत्रमिति वा, एवमेव ० ।

पदार्थान्वय — धन्म-धन्य (अनगर) की ग्रीवाए०-ग्रीवा की ऐसी आकृति हो गई थी से जहा०-जैसी करगगीवाति वा-करवे (मिट्टी का छोटा सा पात्र) की ग्रीवा होती है अथवा कुडियागीवाति वा-कुण्डिका (कमण्डलु) की ग्रीवा होती है उच्चद्वयतेति वा-अथवा उच्चस्थापनन-उंचे मुँह वाला बर्तन होता है एवामेव०-इसी प्रकार उनकी ग्रीवा भी सूरकर लम्बी दिखाई देती थी । धन्म-धन्य अनगर का हणुआण-चिबुक-ठोड़ी ऐसी सुन्दर हो गई थी से जहा०-जैसे लाउयफलेति वा-तुम्बे का फल होता है हकुव-फलेति वा-हकुव-घनस्पति विशेष का फल होता है अथवा अन्नगट्टियाति वा-आम की गुठली होती है एवामेव०-इसी प्रकार धन्य अनगर का चिबुक भी माम और रुधिर से रहित हो कर सूख गया था । धन्म-धन्य अनगर के उद्धरण-ओठ ऐसे हो गये थे से जहा०-जैसे मुक्कजलोयाति वा-सूखी हुई जान होती है अथवा सिलेसगुलियाति वा श्लेष्म की गुटिका होती है अथवा अलक्षगुलियाति वा-अलक्ष-महदी की गुटिका होती है एवामेव०-इसी प्रकार धन्य अनगर के ओठ भी मुरझा गये थे । धन्म-धन्य अनगर की जिभाण-जिह्वा ऐसी हो गई थी से जहा०-जैसे वटपत्रेति वा-वट वृक्ष का पत्रा होता है अथवा पलाशपत्रेति वा-पलाश वृक्ष का पत्रा होता है अथवा साकपत्रेति वा-शाक के पत्रे होते हैं एवामेव०-इसी प्रकार धन्य अनगर की जिह्वा भी सूख गई थी ।

मूलार्थ—धन्य अनगर की ग्रीवा मांस और रुधिर के अभाव से सूख कर इस तरह दिखाई देती थी जैसी सुराई, कुण्डिका (कमण्डलु) और किसी ऊंचे मुख वाले पात्र की ग्रीवा होती है । उनका चिबुक (ठोड़ी) भी इसी प्रकार सूख गया था और ऐसा दिखाई देता था जैसा तुम्बे या हकुव

का फल अथवा आम की गुठली होती है । थोठों की भी यही दशा थी । वे भी खल कर ऐसे हो गये थे जैसे खरी हुई जोंक होती है अथवा ग्लेम्स या मेहदी की गुटिका होती है । उनमें रक्त का निलकुल अभाव हो गया था । जिह्वा में भी निलकुल रक्त का अभाव हो गया था, वह ऐसी दिखाई देती थी जैसा बट वृक्ष का अथवा पलाश (टाक) का पत्ता हो या खसे हुए शाक का पत्ता हो ।

टीका—इम सूत्र म धन्य अनगार की शीमा, चिचुक, ओठ और जिह्वा का उपमा अलङ्कार से वर्णन किया गया है । शीमा में भी अन्य अणवों के समान आम और रुधिर का विलकुल अभाव हो गया था । अतः वह स्वभावतः लम्बी दिखाई देती थी । सूत्रकार ने उसकी उपमा लम्बे मुख वाले सुराई आदि पात्रों से दी है । इमने लिए सूत्र में एव 'उच्चस्थापनक' पत्र आया है, जो इसी प्रकार का एक पात्र होता है ।

जो चिचुक कमी मास और रुधिर से परिपूर्ण था उसकी आत्मा यह दशा हो गई थी जैसी एक सूखे हुए तुम्बे के या हकुन (एक प्रकार का वनस्पति) के फल की होती है अथवा वह ऐसी दिखाई देती थी जैसे एव आम की गुठली हो ।

जो ओठ कभी त्रिभुज के समान रक्त थे वे तप के कारण सूखकर विलकुल निचर्ण हो गये थे । उनकी आकृति अब इस प्रकार हो गई थी जैसी ग्लेम्स और सूखी हुई मेहदी की गुटिका होती है । जिह्वा भी सूख कर बट वृक्ष के पत्ते के समान अथवा पलाश (टाक) के पत्ते के समान नीरम और सूखी हो गई थी ।

यह सब तप आत्म शुद्धि के ही लिये होता है । यह भी इम वर्णन से सिद्ध होता है कि उत्कृष्ट तप ही आत्म-शुद्धि की सामर्थ्य रखता है और इसीके द्वारा कर्मा की निर्जरा भी हो सकती है । यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि तप सदा सम्यक् ज्ञान और सम्यक् दर्शन पूर्वक ही सिद्ध हो सकता है । जब तक सम्यक् ज्ञान और सम्यक् दर्शन न हो तब तक केवल तप से कोई भी मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर सकता ।

अत्र सूत्रकार धन्य अनगार के नाक आदि अङ्गों के विषय में कहते हैं —

धन्नस्स नासाए से जहा अंबग-पेसियाति वा अंबा-
डग-पेसियाति वा मातुलुंग-पेसियाति वा तरुणिया० एवा-

मेव० । धन्नस्स अच्छीण० से जहा० वीणा-छिड्ढेति वा
 वद्धीसग-छिड्ढेति वा पाभातिय-तारिगा इ वा एवामेव० ।
 धन्नस्स कण्णाणं० से जहा० मूला-छल्लियाति वा वालुक०
 कारेल्लय-छल्लियाति वा एवामेव० । धन्नस्स सीसस्स से
 जहा० तरुणग-लाउएति वा तरुणग-एलालुयत्ति वा
 सिण्हालएति वा तरुणए जाव चिट्ठति एवामेव धन्नस्स
 अणगारस्स सीसं सुक्कं लुक्खं णिम्मंसं अट्ठि-चम्म-च्छिर-
 ताए पन्नायति णो चेव णं मंस-सोणियत्ताए, एवं सव्वत्थ,
 णवरं उदरभायण-कण्ण-जीहा-उट्ठा एएसि अट्ठी ण भन्नति
 चम्मच्छिरत्ताए पण्णाय इति भन्नति ।

धन्यस्य नासिकाया० अथ यथानामकाम्रक-पेशिकेति
 वाम्रातक-पेशिकेति वा मातुलुङ्ग-पेशिकेति वा तरुणिका० एव-
 मेव० । धन्यस्याक्ष्णो० अथ यथानामक वीणा-छिद्रमिति वा
 वद्धीसक-छिद्रमिति वा प्राभातिक-तारकेति वा, एवमेव० । धन्य-
 स्य कर्णयो० अथ यथानामका मूल-छल्लिकेति वा वालुक-छल्लि-
 केति वा कारेल्लरु-छल्लिकेति वा, एवमेव० । धन्यस्य शीर्षकस्य०
 अथ यथानामक तरुणकालावुरिति वा तरुणकालुकमिति वा
 सिण्हालकमिति वा तरुणक यावत्तिष्ठति, एवमेव० धन्यस्यान-
 गारस्य शीर्षं शुक्कं रूक्ष निर्मांसमस्थि चर्म-शिरावत्तया प्रज्ञायते
 नो चैव नु मास-शोणितवत्तया । एव सर्वत्र नवरमुदरभाजन-कर्ण-
 जिह्वौष्ठेषु (एतेषु) अस्थीति (पद) न भण्यते, चर्म-शिरावत्तया

प्रज्ञायन्त इति भण्यते ।

पदार्थान्वय — धन्वस्म-धन्य अनगार की नामाए-नामिका तप-तेज मे ण्मी हो गई थी से जहा०-जैसी अग्रगपेसियाति वा-आम की फार होती है अथवा अग्रगपेमियाति वा-अम्रातक-अम्राडा की फार होती है अथवा मातुलुगपेसियाति वा-मातुलुङ्ग-वीनपूरक फल की फार होती है जो तरुणिया-कोमल हाँ फाट कर धूप मे सुगन्ध दी गई हो एवामेव०-यही दशा धन्य अनगार की नासिका की भी हो गई थी । धन्वस्म-धन्य अनगार की अञ्छीण०-आग्यो की यह दशा हो गई थी से जहा०-जैसे वीणाछिड्ढेति-वीणा के छिद्र की होती है अथवा नद्धीमगछिड्ढेति वा-नद्धीसक नाम वाले वायु विशेष के छिद्र की होती है अथवा पाभातियतारगा इ वा-प्रभात समय का तारा होता है एवामेव०-इसी प्रकार धन्य अनगार की आवे भीतर धँस गई थी । धन्वस्म-धन्य अनगार के कण्ठाण्-कानो की यह दशा हो गई थी से जहा०-जैसे मूला-छल्लियाति वा-मूला का छिल्ला होता है अथवा बालुक०-चिर्भटी की छाल होती है अथवा कारेन्नय छल्लियाति वा-करेले का छिल्ला होता है एवामेव०-इसी प्रकार धन्य अनगार के कान भी सूख गये थे । धन्वस्म-धन्य अनगार के सीमस्स-शिर ऐसा हो गया था से जहा०-जैसे तरुणगलाउएति वा-कोमल तुन्जक अथवा तरुणगण्ठालुएति वा-कोमल आळ अथवा मिण्डालएति वा-मिस्तालक-सेफालक नामक फल विशेष जो तरुणए-कोमल जाव-यावत्-तोड़कर धूप मे कुम्हलाया हुआ चिड्ढति-रहता है एवामेव०-इसी प्रकार धन्वस्म-धन्य अनगार का सीस-शिर सुक्क-शुष्क हो गया लुक्क-रुक्क हो गया शिम्मम-मास रहित हो गया और केवल अट्टिचम्मच्छिरत्ताए-अस्थि, चर्म और नामा जाल के कारण पञ्चायति पहचाना जाता था जो चैव ण-न कि मममो-गियत्ताए-आम और रधिर के कारण एव-इसी प्रकार मन्वत्थ-मन अङ्गो के विषय मे जानना चाहिए णवर-विशेषता इतनी है कि उदरभायण-उदर-भाना कन्न-जान जीहा-जिहा उट्टा-ओठ एण्णस-इनके विषय मे अट्टी-‘अस्थि’ यह पद ण भन्नति-नहीं कहा जाता, क्योंकि इनमे अस्थि नहीं होती अतः केवल चम्मच्छिरत्ताए-चर्म और नामा जाल से पण्णाय इति-जाने जाते थे इस प्रकार भन्नति-पहना चाहिए । अर्थात् जिन स्थानों मे अस्थि नहीं होती उनके विषय मे केवल चर्म

और शिग घाले होने से इतना ही कफना चाहिए ।

मूलार्थ—धन्य अनगार की नागिका तप के कारण घृण कर ऐसी हो गई थी जैसी एक आम, आमालक या मातुलुग फल की फारु कोमल २ वाट कर धूप में सुखा देने से हो जाती है । धन्य अनगार की आंखें इस प्रकार लिखाइ दती थीं जैसा वीणा या बद्धीमग (साध विशेष) का छिट्ट हो अथवा प्रमात फाल का टिमटिमाता हुआ तारा हो । इसी तरह उनकी आंखें भी भीतर घँग गई थीं । धन्य अनगार के कान ऐसे हो गये थे जैसे मूली का दिक्का होता है अथवा चिर्भटी की छाल होती है या करेले का दिक्का होता है । जिस प्रकार ये घृण कर मुरभा जाते हैं इसी प्रकार उनके कान भी मुरभा गये थे । धन्य अनगार का शिर ऐसा हो गया था जैसा कोमल तुम्बक, कोमल आतू और सेकालक धूप में रगे हुए घृण जाते हैं इसी प्रकार उनका शिर घृण गया था, सूखा हो गया था और उममें केवल अस्थि, चर्म और नामा-जाल ही दिखाई देता था किन्तु माम और रुधिर नाममात्र के लिये भी शेष नहीं रह गया था । इसी प्रकार सब अङ्गों के विषय में जानना चाहिए । विशेषता केवल इतनी है कि उदर-भाजन, कान, जिह्वा और थोठ इनके विषय में 'अस्थि' नहीं कहना चाहिए, किन्तु केवल चर्म और नामा-जाल से ही ये पहचाने जाते थे ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि इन अङ्गों में अस्थि नहीं होती ।

टीका—इस सूत्र में धन्य अनगार की नासिका, कान, आंखें और शिर का वर्णन पूर्वोक्त अङ्गों के समान ही उपमा अलङ्कार के द्वारा किया गया है । शेष सब अर्थ मूलार्थ में ही स्पष्ट कर दिया गया है ।

इस सूत्र में अनेक प्रकार के कन्द, मूल और फलों से उपमा दी गई है । उनमें से आमालक, मूलक, घालुकी और कारेडक ये कन्द और फल विशेषों के नाम हैं । तथा 'आलुक-कन्द-विशेषस्तन्वानेकप्रकारक भवति । परिग्रहार्थमेलालुक-मित्युक्तम् ।' अर्थात् आलुक एक प्रकार का कन्द होता है, जो आजकल आलू के नाम से प्रसिद्ध है ।

इस प्रकार सूत्रकार ने धन्य अनगार के पैर से लेकर शिर तक सब अङ्गों का वर्णन कर दिया है । इसमें विशेषता केवल इतनी ही है कि उदर-भाजन,

जिह्वा, कान और ओठों के साथ 'अस्थि' शब्द का अन्वय नहीं करना चाहिए ।
शेष सब अङ्गों के साथ "सुम्न लुक्ल गिम्मस—" इत्यादि सब विशेषण लगाने
चाहिए ।

अब सूत्रकार प्रसारान्तर से धन्य अनगार के शरीर का वर्णन करते हैं —

धन्ने णं अणगारे णं सुक्केणं भुक्खेणं पात-जंघोरुणा
विगत-तटिकरालेणं कटि-कडाहेणं, पिट्टमवस्सिएणं उदर-
भायणेणं, जोइज्जमाणेहिं पांसुलि-कडएहिं, अक्ख-सुत्त-
मालाति वा गणिज्ज-मालाति वा गणेज्जमाणेहिं, पिट्ठि-करं-
डग-संधीहिं, गंगा-तरंग-भूएणं उर-कडग-देस-भाएणं
सुक्क-सप्प-समाणाहिं वाहाहिं, सिट्ठिल-कडालीविव चलं-
तेहिं य अग्ग-हत्थेहिं, कंणवातिओ विव वेवमाणीए सीस-
घडीए, पव्वाय-वदण-कमले, उव्वभड-घडामुहे, उव्वुड्डु-
णयणकोसे, जीवं जीवेणं गच्छति, जीवं जीवेणं चिट्ठति,
भासं भासिस्सामीति गिलाति३ । से जहाणामते इंगाल-
सगडियाति वा जहा खंदओ तथा जाव हुयासगे इव
भास-रासि-पलिच्छन्ने तवेणं, तेएणं, तवतेयसिरीए उव-
सोभेमाणे २ चिट्ठति । (सूत्रम् ३)

धन्यो न्वनगारो नु शुक्केण (बुभुक्षायोगात् रूक्षेण),
पाद-जङ्घोरुणा, विकृत-तटिकरालेन कटि-कडाहेन, पृष्ठमवश्रि-
तेनोदर-भाजनेन, (निर्मासतया) दृश्यमानैः पार्श्वस्थि-कटकै
रक्षसूत्र-मालेति वा गणित-मालेति वा गण्यमानैः पृष्ठ-करण्डक-

सन्धिभिर्गङ्गा तरङ्गभूतेनोर-कटकदेश-भागेन, शुष्क-सर्प समाना-
भ्या वाहुभ्याम्, शिथिल-कटालिकेव चलद्भ्यामग्र-हस्ताभ्याम्,
कम्पन-वातिक इव वेपमानया शीर्ष-घट्या (लक्षित), प्रम्लान-
वदन-कमल, उद्भट-घट-मुख, उद्धृत-नयनकोश, जीव जीवेन
गच्छति, जीव जीवेन तिष्ठति, भापां भापिष्य इति ग्लायति३ ।
अथ यथानामकेङ्गाल-शकटिकेति वा यथा स्कन्दकस्तथा यावद्
हुताशन इव भस्म-राशि-प्रतिच्छन्नस्तपसा, तेजसा, तपस्तेज-
श्रियोपशोभमानस्तिष्ठति । (सूत्रम् ३)

पदार्थान्वय — धन्ने-धन्य अणुगारे-अनगार ण-दोनो वाक्यालङ्कार के
लिए हे सुक्वेण-मास आदि के अभाव से सूर्ये हुए भुक्वेण-भूय के कारण रखे
पडे हुए पादजघोरुणा-पैर, जङ्गा और ऊर से विगततडिकरालेण-माम के क्षीण
होने से पार्श्व भागों की अस्थिया नदी के तट के समान भयङ्कर रूप से निमग्न
उन्नत हो रही थीं ऐसे ऋडिऋडाहण-ऋटिरूप कटाह-ऋच्छप-ऋष्ठ या भाजन विशेष
से, पिट्टमवस्सिएण-यकृत, ग्रीहा आदि के क्षीण होने से पीठ के साथ मिले हुए
उदरभायणेण-उदर-भाजन से, जोडझमाणेहिं-निर्मास होने से दिखाई देते हुए
पासुलिकडएहिं-पार्श्वस्थि-ऋटक से, अक्षरमुत्तमालाति वा-ऋद्राथ के दानों की
माला अथवा गण्डिमालाति वा-गिनती की माला के दाने जिस प्रकार गण्डिमामा-
णेहिं-पृथक् ० गिने जा सकते हैं इसी प्रकार मास के अभाव से पृथक् ० गिने
जाने वाले पिट्टिकरडगसधीहिं-ऋष्ठ करण्डक की मन्धियों से, गगातरङ्गभूएण-
गङ्गा नदी की तरङ्गों से समान उरकडगदेसभाएण-ऋक्ष स्थल रूपी कटर-वशदलमय-
चटाई के विभाग से सुक्मप्यममाणेहिं-सूखे हुए सर्प के समान ग्राहाहिं-भुजाओं से
सिद्धिलऋडालीवित्र-शिथिल लगाम के समान चलतेहिं-ऋपते हुए अग्गहत्थेहिं-
अग्र हस्त-हाथों से कपणवातियो विव-ऋम्पन-वातिक रोग वाले पुरुष के समान
वेवमाणीए-ऋम्पायमान सीमघडीए-शिर रूपी घटी से युक्त यह धन्य अनगार
पव्वायवदणकमले-मुरझाए हुए मुरग प्राण उम्भडघडामुह-ओंठों के क्षीण होने से
भयङ्कर घट के मुरग के समान मुरग-कमल जाला उवुडणयणकोसे-निमग्न नयन

कोश भीतर घुम गये थे जीव-जीवन को जीवैण-जीव की शक्ति से गच्छति-चलाता या न कि शरीर की शक्ति से जीव जीवैण चिद्धति-जीव की ही शक्ति से गडा होता था भाम-भाषा भासिस्मामि-रहूगा इति-विचार मात्र से भी गिलाति-ग्लान हो जाता था से-अथ जहा-जैसे रुद्रयो-स्त्वन्व जाव-यावत भासरासिपलिच्छने-भस्म की राशि से दने हुए ह्युयामणे-हुनाशन-अग्नि के इव-ममान तवेण-तप तेण-तेज और तवतेयसिरीए-तप और तेज की शोभा से उवमोभेमाणे-शोभा-यमान होता हुआ चिद्धति-विराजता है । सूत्र ३-तीसरा सूत्र समाप्त हुआ ।

मूलार्थ-धन्य अनगार माम आदि के अभाव से सूखे हुए, भूस के कारण रूखे पैर, जहा और ऊरु से, भयङ्कर रूप से प्रान्त भागों में उन्नत हुए कटि-कटाह से, पीठ के साथ मिले हुए उदर-भाजन से, पृथक् २ दिराई देती हुई पसलियों से, रुद्राक्ष-माला के समान स्पष्ट गिनी जाने वाली पृष्ठ करण्डक (पीठ के उन्नत-प्रदेशों) की सन्धियों से, गङ्गा की तरंगों के समान उदर-कटक के प्रान्त भागों से, सूखे हुए साप के समान भुजाओं से, घोड़े की ढीली लगाम के समान चलते हुए हाथों से, कम्पनवायु रोग वाले पुरुष के शरीर के समान ऋपती हुई शीर्ष-घटी से, मुरझाए हुए मुख कमल से चीण श्रोष्ठ होने के कारण घड़े के मुख के समान विकराल मुख से और आखों के भीतर धँस जाने के कारण इतना कृश हो गया था कि उममें शारीरिक बल विलकुल भी बाकी नहीं रह गया था । वह केवल जीव के मल से ही चलता, फिरता और खड़ा होता था । थोड़ा सा कहने के लिये भी वह स्वयं खेद मानता था । जिम प्रकार एक कोयलो की गाड़ी चलते हुए शब्द करती है, इसी प्रकार उमकी अस्थिया भी चलते हुए शब्द करती थीं । वह स्कन्दक के समान हो गया था । भस्म से ढकी हुई आग के समान वह भीतर से दीप्त हो रहा था । वह तेज से, तप से और तप-तेज की शोभा से शोभायमान होता हुआ विचरता था ।

टीका-इस एक ही सूत्र में प्रकारान्तर से धन्य अनगार के सत्र अवयवों का वर्णन किया गया है । धन्य अनगार के पैर जहा और ऊरु माम आदि के अभाव से विलकुल सूख गये थे और निरन्तर भूखे रहने के कारण विलकुल रूश्र हो गये थे । चिकनाहट उनमें नाम-मात्र के लिये भी शेष नहीं थी । कटि मानो कटाह (कच्छप की पीठ अथवा भाजन विशेष-हलवाई आदियों की बड़ी ० कडाई)

था । उह माम के क्षीण होने से तथा अस्थियों के ऊपर उठ जाने से इतना भयङ्कर प्रतीत होता था जैसे ऊचे २ नदी के तट हों । पेट विलकुल सूख गया । उसमे से यज्ञत और ग्रीहा भी क्षीण हो गये थे । अत वह स्वभावत पीठ के माध मिल गया था । पसलियों पर का भी माम विलकुल सूख गया था और एक २ साफ २ गिनी जा सकती थी । यही हाल पीठ के उन्नत प्रदेशों का भी था । वे भी रुद्राश्व-माला ने दानों के समान सूत्र मे पिरोए हुए जैसे अलग २ गिने जा सकते थे । उर के प्रदेश ऐसे दिग्गई दते थे, जैसी गङ्गा की तगङ्गे हों । भुजाएँ सूख कर सूखे हुए साँप के समान हो गइ थीं । हाथ अपने उश मे नहीं थे और घोडे की ढीली लगाम के समान अपने आप ही इधर-उधर हिलते रहते थे । शिर की स्थिरता भी लुप्त हो गई थी । वह शक्ति से हीन हो कर कम्पन प्रायु रोग वाले पुत्र्य के शरीर के समान कापता ही रहता था । इस अत्युग्र तप के कारण से जो मुख कमी खिले हुए कमल के समान लहलहाता था अत्र मुग्धा गया था । आँठ सूग्ने के कारण नहीं के समान हो गये थे । इससे मुख फूटे हुए घडे के मुख के समान त्रिकराल हो गया था । उनकी दोनों आँसे विलकुल भीतर धँस गई थीं । शारीरिक बल त्रिलकुल शिथिल हो गया था और केवल जीव शक्ति मे ही चलते थे अथवा रुडे होते थे । इस प्रकार सर्वथा दुर्बल होने के कारण उनकी यह उश हो गई थी कि किसी प्रकार की बात-चीत करने मे मे भी उनकी स्वय खेद प्रतीत होता था और जन कुछ कहते भी थे तो अत्यन्त कष्ट के माध । शरीर साधारणत इस प्रकार रचपचा गया था कि जब वे चलते थे तो अस्थियों मे परस्पर रगड लगने के कारण चलती हुई कोयलों की गाडी के समान शब्द उत्पन्न होने लगता था । कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार स्कन्दक का शरीर तप के कारण क्षीण हो गया था । इसी प्रकार धन्य अनगर का शरीर भी हो गया था । किन्तु शरीर क्षीण होने पर भी उनकी आत्मिक-दीप्ति बढ गही थी और वे इस प्रकार दिग्गई दते थे जैसे भस्म से आच्छादित अग्नि होती है । उनका आत्मा तप से, तेज से ओर इनसे उत्पन्न कान्ति से अलौकिक सुन्दरता धारण कर रहा था ।

इस सूत्र मे कुछ एक पदों की व्याख्या हमे आवश्यक प्रतीत होती है । अत पाठकों की सुविधा के लिए हम उनकी वृत्ति-कार ने जो व्याख्या की है उसको यहा दे देते हैं —

‘उत्तरकडगदेमभाषण’ इति—उदर एव कटकस्य—उदरदलमयस्य देहभागो विभाग । ‘सिद्धिलकडालीवित्र’ इति शिथिला कटालिना—अश्वाना मुखसयमनोपकरण-विशेषो लोहमयस्तद्वत् । ‘उन्मडघडामुहे त्ति’ उद्भट—विकराल क्षीणप्रायःजननच्छदत्राद् घटकस्येव मुख यस्य स तथा ।’

यहा यह शङ्का उपस्थित होती है कि ‘उद्भटघटमुख’ इस कथन से मुख पर मुख पत्ती बधी हुई तो सिद्ध नहीं होती ? समाधान में कहा जाता है कि यहा पर सूत्रकार का तात्पर्य केवल तप के कारण क्षीण शरीर के वर्णन से ही है, धर्मोपकरणों के वर्णन से नहीं । यदि वे शरीर के अन्य धर्मोपकरणों का वर्णन करते और इस का न करते तो यह शङ्का उपस्थित हो सकती थी । किन्तु यहा तो किसी का भी वर्णन नहीं मिलता । उपकरणों का वर्णन जब वे अनशन के कारण मृत्यु को प्राप्त हो गये, तब किया गया है । उहा उनके वस्त्र और पात्रों का उल्लेख मिलता है । अतः सिद्ध यह हुआ कि यहा सूत्रकार को उनका केवल शारीरिक वर्णन ही अभिप्रेत था । यदि इस प्रकार न माना जाय तो उनके कटि-पट्ट आदि अङ्गों के वर्णन के साथ चौलपट्ट आदि का भी वर्णन अवश्य मिलता । इस प्रकार तो उपस्थ इन्द्रिय के वर्णन न करने से लोग यह भी कहने लगेंगे कि धन्य अनगार की जननेन्द्रिय भी नहीं थी । अतः इसमें कोई सन्देह नहीं रहा कि धन्य अनगार के मुख पर धर्म ध्वज (मुखपत्ती) सदैव बधी रहती थी ।

कुछ एक हस्त-लिखित प्रतियों में कुछ पाठ-भेद भी मिलता है । यहा उनका देना उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि किसी में मेघकुमार का और किसी में स्क्न्धक का उन्महरण दिया गया है । जो इस विषय में विशेष जानना चाहें, उनमें उक्त कुमारों का वर्णन पढना चाहिए ।

अब सूत्रकार धन्य अनगार की उस समय के अन्य मुनियामें प्रधानता दिग्गते हुए कहते हैं—

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णगरे, गुण-
सिए चेतिते, सेणिए राया । तेणं कालेणं तेणं समएणं
समणे भगवं महावीरे समोसडे परिसा णिग्गया सेणिते

नि० धम्मकहा । परिसा पडिगया । तते णं से सेणिए
 राया समणस्स० ३ अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म समणं
 भगवं महावीरं वंदति णमंसति २ एवं वयासी इमंसि
 णं भंते । इंदभूति-पामोक्खाणं चोदसण्हं समण-साह-
 स्सीणं कतरे अणगारे महा-दुक्कर-कारए चेव महा-णिज्जर-
 तराए चेव ? एवं खलु सेणिया । इमासिं इंदभूति-पामो-
 क्खाणं चोदसण्हं समण-साहस्सीणं धन्ने अणगारे महा-
 दुक्कर-कारए चेव महा-णिज्जरतराए चेव । से केणट्टेणं
 भंते । एवं बुच्चति इमासिं जाव साहस्सीणं धन्ने अणगारे
 महा-दुक्कर-कारए चेव, महा-णिज्जर० ? एवं खलु सेणिया ।
 तेणं कालेणं तेणं समएणं काकंदी नामंनगरी होत्था ।
 उप्पि पासायवडिसए विहरति । तते णं अहं अन्नया
 कदाति पुव्वाणुपुव्वीए चरमाणे गामानुगामं दुत्तिज्जमाणे
 जेणेव काकंदी णगरी जेणेव सहसंववणे उज्जाणे तेणेव
 उवागते । अहापडिख्वं उग्गहं उ० संजमे जाव विह-
 रामि । परिसा निग्गता । तहेव जाव पव्वडते जाव विल-
 मिव जाव आहरति । धन्नस्स अणगारस्स पाढाणं
 सरीर-वन्नओ सव्यो जाव उवसोभेमाणे २ चिट्ठति । से
 तेणट्टेणं सेणिया । एवं बुच्चति इमासि चउदसण्हं
 साहस्सीणं धन्ने अणगारे महा-दुक्कर-कारए महा-निज्जरताए

चेव । तते णं सेणिए राया समणस्स भगवतो महावीर-
 स्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठुट्ठु० समणं
 भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेति २
 वंदति णमंसति २ जेणेव धन्ने अणगारे तेणेव उवा-
 गच्छति २ धन्नं अणगारं तिक्खुत्तो आयाहिणं करेति २
 वंदति णमंसति एवं वयासी धण्णेऽसि णं तुमं
 देवाणु० सुपुण्णे सुकयत्थे कय-लक्खणे सुलद्धे णं देवाणु-
 प्पिया । तव माणुस्सए जम्म-जीविय-फले तिकट्ठु वंदति
 णमंसति २ जेणेव समणे० तेणेव उवागच्छति २
 समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदति णमंसति २ जा-
 मेव दिसं पाउब्भूते तामेव दिसं पडिगए । (सूत्रम् ४)

तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजशह नगरम्, गुण-
 शैलकं चैत्यम्, श्रेणिको राजा । तस्मिन् काले तस्मिन् समये
 श्रमणो भगवान् महावीर समवसृतः । परिपन्निर्गता, श्रेणिको
 निर्गतः । धर्मः कथितः परिपत्प्रतिगताः । ततो नु स श्रेणिको
 राजा श्रमणस्य भगवतो महावीरस्यान्तिके धर्मं श्रुत्वा निशम्य
 श्रमण भगवन्त महावीर वन्दति नमस्यति, वन्दित्वा नत्वा
 चैवमवादीत् “एषां भदन्त । इन्द्रभूति-प्रमुखानाश्चतुर्दशाना
 श्रमण-सहस्राणा कतरोऽनगारो महा-दुष्कर-कारकश्चैव महा-
 निर्जरतरकश्चैव ?” “एव खलु श्रेणिक । एषामिन्द्रभूति-प्रमुखाना-
 श्चतुर्दशानां श्रमण-सहस्राणा धन्योऽनगारो महादुष्कर-कारकश्चैव

महानिर्जरतरकश्चैव” “अथ केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते एतेपा
यावत् सहस्राणां महादुष्कर-कारकश्चैव महा-निर्जरतरकश्चैव ?
एव खलु श्रेणिक ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये काकन्दी नाम
नगर्यभूत् । उपरि प्रासादावतसके विहरति । ततो न्वहमन्यदा
कदाचित् पूर्वानुपूर्व्यां चरन् ग्रामानुग्राम द्रुतन् यत्रैव काकन्दी
नगरी यत्रैव सहस्राभवनमुद्यान तत्रैवोपागत । यथाप्रतिरूपक-
मवग्रहमवग्रह्य सयमेन यावद् विहरामि । परिपन्निर्गता । तथैव
यावत्प्रव्रजित । यावद् विलमिव यावदाहारयति । धन्यस्य न्वन-
गारस्य पादयो, शरीरवर्णन सर्वं यावदुपशोभमानस्तिष्ठति ।
अथ तेनार्थेन श्रेणिक ! एवमुच्यते—एतेपाश्चतुर्दशानां श्रमण-
सहस्राणां धन्योऽनगारो महादुष्कर-कारको महा-निर्जरतरकश्चैव ।
ततो नु स श्रेणिको राजा श्रमणस्य भगवतो महावीरस्यान्तिके
एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्टस्तुष्टो यावत् श्रमणस्य भगवतो महा-
वीरस्य त्रिकृत्व आदक्षिण-प्रदक्षिणा करोति, कृत्वा वन्दति नम-
स्यति च, वन्दित्वा नत्वा च यत्रैव धन्योऽनगारस्तत्रैवोपाग-
च्छति, उपागत्य धन्यस्यानगारस्य त्रिकृत्व आदक्षिण-प्रदक्षिणा
करोति, कृत्वा (त) वन्दति नमस्यति, वन्दित्वा नत्वेवमवा-
दीत्—धन्योऽसि त्व देवानुप्रिय ! सुपुण्य सुकृतार्थं कृत-लक्षण
सुलब्धन्तु देवानुप्रिय ! त्वया मानुषक जन्मजीवित-फलमिति-
कृत्वा वन्दति नमस्यति, वन्दित्वा नत्वा यत्रैव श्रमण ० तत्रै-
वोपागच्छति, उपागत्य श्रमण भगवन्त महावीर त्रिकृत्वो
वन्दति नमस्यति, वन्दित्वा नत्वा च यस्य दिश प्रादुर्भूत

स्तामेव दिश प्रतिगतः । (सूत्रम् ४)

पदार्थान्वय — तेण कालेण—उस काल और तेण समएण—उस समय रायगिहे—राजगृह नाम का खगरे—नगर वा और उसके बाहर गुणसिलए—गुण-शैलक चैतिते—चैत्य । सेणिए—श्रेणिक नाम का राया—राजा राज्य करता था । तेण कालेण—उस काल और तेण समएण—उस समय समणे—श्रमण भगव—भगवान् महावीरे—महावीर स्वामी समोमट्टे—उस गुणशैलक चैत्य में विराजमान हो गये यह समाचार पाकर परिमा—नगर की जनता खिगगया—धर्म-ऋथा सुनने के लिए श्री भगवान् के पास गईं सेणिते—श्रेणिक राजा मी नि०—गया धम्मकहा—श्री भगवान् ने धर्म ऋथा की और परिमा—परिपद् पडिगया—अपने २ घर वापिस चली गईं । तते ण—इमने अनन्तर से—वह सेणिए—श्रेणिक राया—राजा समणस्स—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के अतिए—पास धम्म—धर्म को सोचा—सुनकर और उसका निमम्म—मनन कर समण—श्रमण भगव—भगवान् महावीर—महावीर की वदति—उन्दना करता है उनको णममति २—नमस्कार करना है, उन्दना और नमस्कार कर एव—इम प्रकार वयासी ऋहने लगा भने—हे भगवन् ! इमामिं—इन इदभूतिपामोक्खाण—इन्द्रभूति प्रमुख चौद्दमएह—चौद्दह समणमाहस्सीणं—हजार श्रमणों में कतरे—कौनसा अण-गारे—अनगार महादुक्करकारए चेव—अति दुष्कर क्रिया करने वाला है और महा-खिज्जरतराए चेव—महाऋमों की निर्जरा करने वाला है ? यह सुनकर श्री भगवान् कहने लगे सेणिया—हे श्रेणिक ! एव खलु—इम प्रकार निश्चय से इमामिं—इन इदभूति-पामोक्खाण—इन्द्रभूति-प्रमुख चौद्दमएह—चौद्दह समणमाहस्सीणं—हजार श्रमणों में वन्ने—धन्य अणगारे—अनगार महादुक्करकारए—अत्यन्त दुष्कर क्रिया करने वाला है और महाखिज्जरतराए चेव—बड़ा ऋमों की निर्जरा करने वाला है । यह सुनकर श्रेणिक राजा कहने लगा भते—हे भगवन् ! से—अथ केणट्टेण—किस कारण से एव—इस प्रकार वुच्चति—आप ऐसा कहते हैं कि इमामिं—इन जाव—यावत् इन्द्रभूति-प्रमुख चौद्दह माहस्सीणं—हजार अनगारों में वन्ने—धन्य अणगारे—अनगार ही महादुक्कर-कारए चेव—अत्यन्त दुष्कर तप करने वाला और महाखिज्जर०—बड़ा ऋमों की निर्जरा करने वाला है ? उत्तर में श्री भगवान् कहने लगे सेणिया—हे श्रेणिक ! एव खलु—

इस प्रकार निश्चय से तेण कालेण-उम काल और तेण समएण-उस समय का-
 कदी-कान्दी नाम-नाम वाली नगरी-नगरी होत्था-थी और वहा धन्य कुमार
 उप्पि-उपर पामायवडिसए-श्रेष्ठ ग्रामाद् में विहरति-त्रिचरण करता था तते ण-
 उसी समय अह-मैं अन्नया-अन्यत्ता कदाति-कदाचित् पुब्बाणुपुब्बीए-अनुत्तम
 से चरेमाणे-विहार करता हुआ गामाणुगाम-एक ग्राम से दूसरे ग्राम में दूतिज्ज
 माणे-विहार करता हुआ जेणेव-जहा काकदी-कान्दी नाम की णगरी-
 नगरी थी जेणेव-जहा सहस्रवणे-सहस्राश्रवन उज्जाणे-उद्यान था तेणेव-
 वही उवागते-आया आहापडिरूव-यथा-प्रतिरूप उग्गह-अवग्रह लिया और
 उ० २-अवग्रह लेकर सज्जे०-सयम और तप के द्वारा अपनी आत्मा की भावना
 करते हुए जाव-यावत् विहरामि-त्रिचरण करने लगा तत्र परिसा-परिपद् निग्गता-
 धर्म-कथा सुनने के लिए नगर से सहस्राश्रवन में उपस्थित हुई तहेव-उसी प्रकार से
 धन्य अनगर भी आया और धर्म कथा सुनकर पव्वइते-दीक्षित हो गया जाव-
 यावत् उसने कठिण से कठिन तप प्रारम्भ कर दिया और विल्लमिव-जिस प्रकार सर्प
 आमानी से विल में घुस जाता है इसी प्रकार वह विना किसी लालसा क आहा-
 रेति-आहार करता है । फिर धन्नस्म-धन्य अणगारस्म-अनगर के पादाण-
 पैर मास और रुधिर से रहित होकर सूख गये इसी प्रकार शरीरवन्नञ्चो-सारे
 शरीर का वर्णन कहना चाहिए । वह सब्बो जाव-सब अवयवों के तप रूप लावण्य
 से उवसोभेमाणे-शोभायमान होता हुआ चिट्ठति-विराजमान हो गया । से-अथ
 तेणट्टेण-उस कारण सेणिया-हे श्रेणिक एव-इस प्रकार पुत्तति-मैं कहता हूँ कि
 इमासि-इन चउदमएह-चौद साहस्रीण-हजार मुनियों म धन्ने-धन्य अणगार-
 अनगर महादुक्करकारेण-अत्यन्त कठिन तप करने वाला और महानिज्जरतराण चेव-
 सन से श्रेष्ठ कर्मा की निर्जरा करने वाला है तते-इसके अनन्तर ण-चान्थालङ्कार
 के लिये है से-वह सेणिए-श्रेणिक राया-राजा समणस्म-श्रमण भगवतो-भगवान्
 महावीरस्म-महावीर के अतिए-पाम एयमट्ट-इस बात को सोचा-सुनकर और
 उसका शिमम्म-मनन कर हट्टुट्टु०-हृष्ट और तुष्ट होकर जाव-यावत् समण-श्रमण
 भगव-भगवान् महावीर-महावीर को तिकपुत्तो-तीन धार आयाहिणपयाहिण-
 आदक्षिणा और प्रदक्षिणा करेति २-करता है और आदक्षिणा और प्रदक्षिणा
 कर उनकी वदति-वन्दना करता है और शमसति २-नमस्कार करता है और

वन्दना और नमस्कार कर जेणेव—जहा धन्ने—धन्य अणुगारे—अनगार वा तेणेव—जही उवागच्छति २—आता है और आकर धन्न—वन्ध अणुगारं—अनगार को तिसुत्तो—तीन बार आयाहियपयाहिय—आदक्षिणा और प्रदक्षिणा कर वदति—उनकी वन्दना करता है और श्रममति—उनको नमस्कार करता है । वन्दना और नमस्कार कर एव—इम प्रनार वयासी—कहने लगा देवाणु०—हे देवानुप्रिय ! तुम—तुम धरणेसि—धन्य हो सुपुण्णे—तुम्हारे अच्छे पुण्य हैं सुकयत्थे—तुम कृतार्थ हुए कयलम्बणे—शुभ लक्षणों से युक्त हो देवाणुप्पिया—हे देवानुप्रिय ! माणुमए—मानुष जम्मजीवियफले—जन्म के जीवन का फल तुमने मुलद्धे—अन्त्री तरह प्राप्त कर लिया है तिकट्टु—इस प्रकार स्तुति कर वदति—उनकी वन्दना करता है और श्रममति—उनको नमस्कार करता है और वन्दना ओर नमस्कार करने जेणेव—जहा समणे०—श्रमण भगवार महावीर स्वामी ये तेणेव—वहीं उवागच्छति २—आता है और आकर समण—श्रमण भगव—भगवान् महावीर—महावीर स्वामी की तिसुत्तो—तीन बार वदति—वन्दना करता है और उनको श्रममति—नमस्कार करता है, वन्दना और नमस्कार कर जामेव—जिम दिस—दिशा से पाउभूते—प्रकट हुआ था तामेव—उसी दिस—दिशा को पटिगए—वापिस चला गया । सूत्र ४—चौथा सूत्र समाप्त हुआ ।

मूलार्थ—उस काल और उम समय में राजगृह नाम का नगर था । उमके बाहिर गुणशैलक नाम का चैत्य या उद्यान था । वहा श्रेणिक राजा राज्य करता था । उसी काल और उसी समय में श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी उक्त चैत्य में विराजमान हो गये । नगर की जनता यह सुनकर नगर से बाहर निकली और श्री भगवान् की सेवा में उपस्थित हुई और साथ ही श्रेणिक राजा भी उपस्थित हुआ । श्री भगवान् ने धर्म-कथा सुनाकर सब को सन्तुष्ट किया और सब लोग नगर को वापिस चले गये । श्रेणिक राजा ने इस कथा को सुन कर और उमका मनन कर श्री भगवान् की वन्दना की और उनको नमस्कार किया । फिर वन्दना और नमस्कार कर गोला—“हे भगवन् ! इन्द्रभूति-प्रमुख चौदह हजार श्रमणों में कौनसा श्रमण अत्यन्त कठोर तप का अनुष्ठान करने वाला और सब से बड़ा कर्मों की निर्जरा करने वाला है ?” यह सुनकर श्री भगवान् रुहने लगे—“हे श्रेणिक ! इन्द्रभूति प्रमुख चौदह हजार श्रमणों में धन्य अनगार अत्यन्त कठोर तप का अनुष्ठान करने वाला और सब से बड़ा

कर्मों की निर्जरा करने वाला है ।” (श्री भगवान् के मुख से यह सुनकर फिर श्रेणिक राजा ने कहा) “हे भगवन् ! किम कारण से आप कहते हैं कि चौदह हजार श्रमणों में धन्य अनगार ही कठोर तप करने वाला और मन से बड़ा कर्मों की निर्जरा करने वाला है ।” (श्रेणिक राजा के इस प्रश्न को सुनकर गमाधान रुग्ने हुए श्री भगवान् कहने लगे) “ हे श्रेणिक ! उम काल और उम समय में एक काकन्दी नाम वाली नगरी थी । उसके गहर सहस्राश्रवन नाम का उद्यान था । (यह उद्यान सत्र शतुओं में हरा-भरा रहता था । काकन्दी नगरी में भद्रा नाम की एक सार्थवाहिनी रहती थी । वह धन धान्य से परिपूर्ण थी । उमका धन्य नाम वाला एक पुत्र था, जो यौवनावस्था में विवाहित होकर) श्रेष्ठ प्रामादों में सुग का अनुभव करता हुआ विचरण करता था । इसी समय कमी पूर्वानुपूर्वी से विचरता हुआ, एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विहार करना हुआ मैं जहा काकन्दी नगरी थी और जहा सहस्राश्रवन उद्यान था वहीं पहुँच गया और यथा प्रतिरूप अवग्रह लेकर समय और तप के द्वारा अपनी आत्मा की भावना करते हुए वहीं पर विचरने लगा । नगरी की जनता यह सुनकर बड़ा आई और मैंने उनको धर्म कथा सुनाई । धन्य अनगार के ऊपर इसका विशेष प्रभाव पड़ा और वह तत्काल ही गृहस्थ को छोड़ कर साधु धर्म में दीक्षित हो गया । (उमने तमी से कठोर व्रत धारण कर लिया और केवल आचाम्ल से पारण करने लगा । वह जन आहार और पानी भिचा से लाता था तो मुझको दिखाकर) जिस प्रकार मर्प पिल में बिना किसी परिश्रम के घुस जाता है इसी प्रकार बिना किसी लालमा के आहार करता था । धन्य अनगार के पादों से लेकर सारे शरीर का वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए । उसके सत्र अङ्ग तप रूप लावण्य से शोभित हो रहे थे । इसीलिए हे श्रेणिक ! मैंने कहा है कि चौदह हजार श्रमणों में धन्य अनगार महातप और महा कर्मों की निर्जरा करने वाला है । जब श्रमण भगवान् महाश्रीर स्वामी के मुख से श्रेणिक राजा ने यह सुना और इस पर विचार किया तो हृदय में अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट हुआ और इस प्रकार प्रफुल्लित होकर उमने श्रमण भगवान् महाश्रीर स्वामी की तीन बार आदक्षिणा और प्रदक्षिणा की, उनकी वन्दना की और नमस्कार किया, वन्दना और नमस्कार कर जहा धन्य अनगार था वहाँ गया । वहा जाकर उमने धन्य अनगार

की तीन बार श्राद्धचिन्ता और प्रदक्षिणा की । वन्दना और नमस्कार किया तथा वन्दना और नमस्कार कर कहने लगा कि हे देवानु-प्रिय ! तुम धन्य हो, श्रेष्ठ पुण्य वाले हो, श्रेष्ठ कार्य करने वाले हो, श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त हो और तुमने ही इस मनुष्य जीवन का श्रेष्ठ फल प्राप्त किया है । इस प्रकार स्तुति कर और फिर उनको नमस्कार कर वह जहा श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे वही आगया । वहा श्रमण भगवान् को तीन बार नमस्कार किया और वन्दना की । फिर जिस दिशा से आया था उमी दिशा में चला गया । इस प्रकार चौथा सूत्र समाप्त हुआ ।

टीका—इस सूत्र का अर्थ मूलार्थ में ही स्पष्ट हो गया है । अतः इस विषय में कुछ भी वक्तव्य शेष नहीं है ।

हा, अब वक्तव्य इतना अवश्य है कि इस सूत्र से हमें तीन शिक्षाएँ मिलती हैं । उनमें से पहली तो यह है कि जिसमें जो गुण हों उनका निःसङ्कोच-भाव से वर्णन करना चाहिए । और गुणवान् व्यक्ति का धन्यवाद आदि से उत्साह घटाना चाहिए । जैसे यहा पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने किया । उन्होंने धन्य अनगार के कठोर तप का यथातथ्य वर्णन किया और उसको उसके लिये धन्य-वाद भी दिया । दूसरी शिक्षा हमें यह मिलती है कि एक बार जब ससार से समत्व-भाव छोड़ दिया तो फिर सम्यक् तप के द्वारा आत्मशुद्धि अवश्य कर लेनी चाहिए । यही ससार के इतने सुखों को त्यागने का फल है । जो व्यक्ति माधुघन कर भी समत्व में ही फसा रहे उसको उस त्याग से निम्नी प्रकार की भी सफलता की आशा नहीं करनी चाहिए । क्योंकि इस प्रकार करने से तो वह कहीं का नहीं रहता और उसका इह-लोक और पर-लोक दोनों ही निगड़ जाते हैं । यहा धन्य अनगार ने हमारे सामने कितना अच्छा उदाहरण रखा है कि उन्होंने जब एक बार गृहस्थ के सारे सुखों को त्याग साधु-वृत्ति ग्रहण कर ली तो उसको सफल बनाने के लिये उत्कृष्ट से उत्कृष्ट तप किया और लोगों को प्रता दिया कि किस प्रकार तप के द्वारा आत्मशुद्धि होती है और कैसे उक्त तप से आत्मा सुशोभित किया जाता है । तीसरी शिक्षा जो हम इससे मिलती है वह यह है कि जब निम्नी व्यक्ति की स्तुति करनी हो तो उसमें वास्तव में नितने गुण हों उन सब का वर्णन करना

चाहिये । पहले का अभिप्राय यह है कि नितने गुण उस व्यक्ति में विद्यमान हैं उन्हीं को लक्ष्य में रख कर स्तुति करता उचित है न कि और असत्य गुणों का आरोपण करके भी क्योंकि ऐसी स्तुति प्रशंसनीय होने के बजाय हास्यास्पद बन जाती है । ऐसी स्तुति हास्यास्पद ही नहीं बल्कि इसमें स्तुति करने वाले को दोष भी लगता है । अतः झूठी प्रशंसा कर निरर्थक ही किसी को बॉसों पर नहीं चढ़ाना चाहिए । यही तीन शिक्षाएँ हैं, जो हमें इस सूत्र से मिलती हैं । इनके द्वारा उन्नति की ओर धृता हुआ आत्मा सुशोभित होता है ।

अब सूत्रकार धन्य अनगर के तप के अनन्तर की दशा का वर्णन करते हैं —

तए णं तस्स धण्णस्स अणगारस्स अन्नया कयाति
 पुव्व-रत्तावरत्तकाले धम्मजागरियं० इमेयारूवे अब्भत्थिते
 ५ एवं खलु अहं इमेणं ओरालेणं जहा खंदओ तहेव चित्ता
 आपुच्छणं थेरेहि सद्धि विउलं दुरुहंति मासिया संले-
 हणा नवमासपरियातो जाव कालमासे कालं किच्चा उड्ढं
 चंडिम जा णव य गेविज्ज विमाणपत्थडे उड्ढं दूरं वीत्ति-
 वत्तित्ता सव्वट्टुसिद्धे विमाणे देवत्ताए उववन्ने । थेरा तहेव
 उयरंति जाव इमे से आयारभंडए । भंते त्ति भगवं गोतमे
 तहेव पुच्छति जहा खंदयस्स । भगवं वागरेति जाव
 सव्वट्टुसिद्धे विमाणे उववण्णे । धन्नस्स णं भंते । देवस्स
 केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोतमा ! तेत्तीसं साग-
 रोवमाडं ठिती पन्नत्ता । से णं भंते ! ततो देव-लोगाओ
 कहिं गच्छिंहिति ? कहिं उववज्जिंहिति ? गोयमा ! महा-
 विदेहे वासे सिज्झिंहिति ५ । तं एवं खलु जंबू ! समणेणं

जाव संपत्तेणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते ।
(सूत्रं ५) पढमं अज्झयणं समत्तं ।

ततो नु तस्य धन्यस्यानगारस्यान्यदा कदाचित् पूर्व-
रात्रापरात्र-काले धर्म-जागरिकैतद्रूपाध्यात्मिका ५ । एवं खल्वह-
मनेनौदारणे यथा स्कन्दक., तथैव चिन्तापृच्छणा । स्थविरै. सार्धं
विपुलमारोहति । मासिकी सलेखना, नवमास-पर्यायः, यावत् काल-
मासे काल कृत्वोर्ध्वं चन्द्र० यावन्नव च ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटा-
दूर्ध्वं दूरं व्यतिक्रम्य सर्वार्थसिद्धे विमाने देवतयोत्पन्नः । स्थविरा-
स्तथैवावतरन्ति । यावदिमान्याचारभण्डकानि । भदन्तेति गौतम-
स्तथैव पृच्छति । यथा स्कन्धस्य भगवान् व्याकरोति यावत्सर्वार्थ-
सिद्धे विमाने उत्पन्नः । “धन्यस्य नु भदन्त ! देवस्य कियन्त
काल स्थितिः प्रज्ञप्ता ?” “गौतम ! त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा स्थितिः
प्रज्ञप्ता ।” “स तु भदन्त ! ततो देवलोकात् कुत्र गमिष्यतीति ?
कुत्रोत्पत्स्यतीति ?” “गौतम ! महाविंदेहे वासे सेत्स्यतीति ।”

तदेव खलु जम्बु ! श्रमणेन यावत्सप्राप्तेन प्रथमस्याध्य-
यनस्यायमर्थः प्रज्ञप्तः । (सूत्रम् ५) प्रथमाध्ययन समाप्तम् ।

पदार्थान्वय — तए-इमके अनन्तर ए-वाक्यालङ्कार के लिपि है तस्म-
उस धन्यस्म-धन्य श्रमणारस्म-अनगार को श्रमणा-अन्यदा कयाति-जिसी समय
पुत्ररत्तावरत्तकाले-मध्य-रात्रि के समय धम्मजागरिय-धर्म-जागरण करते हुए
इमेयासूवे-उस प्रकार के श्रमणस्थिते-आध्यात्मिक विचार उत्पन्न हुए श्रह-मैं एव-
इस प्रकार खलु-निश्चय मे इमेण-इस श्रोत्रालेण-उत्तर तप के कारण मे जहा-
जैसा गदशो-मन्त्र हुआ उमी प्रकार हो जाउ और तनुमाग ही मन्त्रो
जैसी स्कन्दक को हुई थी तहव-उमी प्रकार चिन्ता-अज्ञान चरने की चिन्ता

उत्पन्न हुई उमी प्रभार आपुच्छण-श्री भगवान् मे पूत्रा और पूच्छण येरेहि-
 स्थिरी के मद्धि-माय विउले-धिपुलगिरि पर दुरुहति-चढ गया मामिया-
 मामिकी मलेहणा-सलेग्ना की नवमाम-नौ महीने तत्र परियातो-मयम-पर्याय का
 पालन किया जाव-यावत् कालमासे-मृत्यु के समय काल क्रिया-काल के द्वारा उड्डु-
 उचे चदिम-चन्द्रमा से जाव-यावत् य-पुत्र णव-नव गेविज्जविमाण-पत्यडे-
 प्रवेयक विमानां के प्रस्तट से उड्डु-उचे दूर-दूर वीतिवदिता-व्यतिज्जम करके
 सव्वट्टिमिद्धे-सर्वाथसिद्ध विमाणे-विमान में देवत्ताए-देव रूप से उववन्ने-उत्पन्न
 हो गया । येरा-स्थिरि तहेव-उसी प्रभार उयरति-त्रिपुलगिरि से उतर गये और
 जाव-यावत् श्री भगवान् से कहने लगे कि हे भगवन् से-उस धन्य अनगार के इमे-
 ये आयारभडए-आचार-भण्डोपकरण हैं अर्थात् ये उमके वस्त्र पात्र आदि उपकरण
 हैं इमके अनन्तर भगव-भगवान् गौतमे-गौतम तहेव-उसी प्रभार पुच्छति-
 श्री भगवान् से पूछते हैं जहा-जैसे रदयस्म-स्सन्दक के विषय मे पूत्रा वा भगव-
 श्री भगवान् इसके उत्तर मे वागरेति-प्रतिपादन करते हैं कि जाव-यावत् धन्य
 अनगार मव्वट्टिमिद्धे-सर्वाथसिद्ध विमाणे-विमान में उववण्णे-देव रूप से उत्पन्न
 हो गया । ण-पूर्ववत् वाक्यालङ्कार के लिये हे भते !-हे भगवन् ! इस प्रकार
 से फिर गौतम स्वामी जी ने श्री भगवान् से पूत्रा धन्नस्म-धन्य देवस्म-देव की
 केवतिय-कितने काल-काल की ठिती-स्थिति पणत्ता-प्रतिपादन की है ? उत्तर
 मे श्री भगवान् कहते हैं कि गोयमा !-हे गौतम तेचीस-तेतीस सागरोवमाड-
 सागरोपम की ठिती-स्थिति पन्नत्ता-प्रतिपादन की है । ण-पूर्ववत् भते-हे
 भगवन् ! से-वह धन्य देव ततो-उस देवलोगाओ-देवलोक से च्युत होकर कर्हि-
 कहा पर गच्छिहिंति-जायगा ? कर्हि-नहा उववज्जिहिंति-उत्पन्न होगा ? भग
 वान् इसके उत्तर मे कहते हैं गोयमा-हे गौतम ! महाविदेह-महाविदेह वासे-
 क्षेत्र मे सिज्जिहिंति ५-सिद्ध होगा । त-सो एव-इस प्रकार रल्लु-निश्चय से
 जन्-हे जन् ! ममणेण-भ्रमण भगवान् ने जाव-यावत् जो सपत्तेण-मोक्ष को प्राप्त
 हो चुके हैं पढमस्म-(तृतीय वर्ग के) प्रथम अज्जभयणस्म-अध्ययन का ग्रयमडे-यह
 अर्थ पन्नत्ते-प्रतिपादन किया है । सूत्र ५-पञ्चम सूत्र समाप्त हुआ । पढम-प्रथम अज्ज-
 यण-अध्ययन ममत्त-समाप्त हुआ ।

मूलार्थ—तत्र उय धन्य अनगार को अन्यदा किसी समय मध्य-रात्रि में

धर्म-जागरण करते हुए इस प्रकार के आध्यात्मिक विचार उत्पन्न हुए कि मैं इस उत्कृष्ट तप से कृश हो गया हूँ अतः प्रभात काल ही स्कन्दरु के ममान श्री भगवान् से पूछकर स्थविरो के साथ विपुलगिरि पर चढ़कर अनशन व्रत धारण कर लूँ। उमने तदनुसार ही श्री भगवान् की आज्ञा ली और विपुलगिरि पर अनशन व्रत धारण कर लिया। इस प्रकार एक मास तक इस अनशन व्रत को पूर्ण कर और नौ मास तक दीक्षा का पालन कर वह काल के समय काल करके चन्द्र से ऊँचे यावत् नव-ग्रहैवक विमानों के प्रन्तदों को उल्लङ्घन कर मर्वार्थमिद्ध विमान में देव रूप से उत्पन्न हो गया। तब स्थविर विपुलगिरि से नीचे उतर आये और भगवान् से कहने लगे कि हे भगवन् ! ये उम धन्य अनगार केवल-पात्र आदि उपकरण हैं। तब भगवान् गौतम ने श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से प्रश्न किया कि हे भगवन् ! धन्य अनगार समाधि से काल कर कहा उत्पन्न हुआ है। भगवान् ने इसके उत्तर में कहा कि हे गौतम ! धन्य अनगार समाधि युक्त मृत्यु प्राप्त कर मर्वार्थमिद्ध विमान में देव-रूप से उत्पन्न हुआ। गौतम स्वामी ने फिर प्रश्न किया कि हे भगवन् ! धन्य देव की वहा कितने काल की स्थिति है ? भगवान् ने उत्तर दिया कि तेतीस मासगोपम धन्य देव की वहा स्थिति है। गौतम ने प्रश्न किया कि देवलोक से च्युत होकर वह कहा जायगा और कहा पर उत्पन्न होगा ? भगवान् ने कहा कि वह महाविदेह क्षेत्र में मिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो निर्वाण-पद प्राप्त कर मन दुःखों से विमुक्त हो जायगा।

श्री सुप्रभा स्वामी जी कहते हैं कि हे जम्बू ! इस प्रकार मोक्ष को प्राप्त हुए श्री श्रमण भगवान् ने तृतीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है। पाचवा सूत्र समाप्त। प्रथमाध्ययन समाप्त हुआ।

टीका—इस सूत्र में धन्य अनगार की अन्तिम समाधि का वर्णन किया गया है और उमने लिए सूत्रकार ने धन्य अनगार की स्कन्दक मन्यासी से उपमा दी है। इस प्रकार तप करते हुए धन्य अनगार को एक समय मध्य-रात्रि में जागरण करते हुए विचार उत्पन्न हुआ कि मुझ में अभी तक उठने की शक्ति विद्यमान है और मेरे धर्माचार्य श्री भगवान् महावीर स्वामी भी अभी तक विद्यमान हैं तो फिर ऐसी सुनिधा होने पर भी मैं अनशन व्रत धारण क्यों न कर लूँ। इस विचार

के आते ही उन्होंने प्रातः काल ही श्री भगवान् की आज्ञा ली और आत्म-विशुद्धि के लिये पञ्च महाव्रतों का पाठ पढा तथा उपस्थित श्रमण और श्रमणियों से श्रमाप्राथना कर तथा रूप स्थविरों के साथ शनैः २ विपुलगिरि पर चढ़ गये । वहाँ पहुँच कर उन्होंने कृष्ण-वर्णाय पृथिवी शिला पट्ट पर प्रतिलेखना कर दर्भ का मस्तारक बिछाया और पद्मासन लगाकर बैठ गये । फिर दोनों हाथ जोड़े और उनसे शिर पर आशर्तन किया । इस प्रकार पूर्व निशा की ओर मुग्न कर 'नमोऽस्तुभ्यं' के द्वारा पहले सत्र सिद्धों को नमस्कार किया, फिर उसीसे श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को भी नमस्कार किया और कहा कि हे भगवन् ! आप वहीं पर बैठ कर सत्र कुठ देख रहे हैं अतः मेरी वन्दना स्वीकार करें और मैंने पहले ही आपसे समक्ष अष्टादश पापों का त्याग किया था अत्र मैं आपकी ही साक्षी देखकर उनका फिर से जीवन भर के लिये परित्याग करता हूँ । इनके साथ ही साथ अब अशन, पान, स्नाय और स्नाय पदार्थों का भी परित्याग करता हूँ । अपने परम प्रिय शरीर के भगवन् को भी छोड़ता हूँ तथा आज से पादोपगमन नामक अनशन व्रत धारण करता हूँ । इस प्रकार श्री भगवान् की वन्दना कर और उनकी साक्षी कर उक्त प्रण किया और उसीके अनुसार विचरने लगे । उन्होंने सामायिक आदि से लेकर एकादश अङ्गों का अध्ययन किया और एक माम तत्र अनशन व्रत धारण कर अन्त में समाधि-मरण प्राप्त किया । उनकी सत्र दीक्षा की अवधि केवल नौ मास हुई, जिस में साठ भक्त अशन छेदन कर आलोचना द्वारा सर्वोत्तम उक्त समाधि-मरण प्राप्त किया ।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यहाँ कहा गया है कि उन्होंने साठ भक्तों का परित्याग किया तो प्रत्येक को निश्चय ही सन्तुष्ट है कि भक्त किसे कहते हैं ? उत्तर में कहा जाता है कि प्रत्येक दिन के दो भक्त अर्थात् आहार या भोजन होते हैं । इस प्रकार एक मास के साठ भक्त हो जाते हैं । इसके विषय में वृत्तिकार भी यही लिखते हैं—“प्रतिदिन भोजनद्वयस्य परित्यागात्त्रिंशत्ता दिनैः पष्टिर्भक्तानां त्यक्ता भवन्ति” अर्थ स्पष्ट कर दिया गया है । इस प्रकार जब धन्य अनगार ने एक मास पयन्त अनशन धारण किया तो साठ भक्तों के परित्याग में कोई सन्देह ही नहीं रहता । उन भक्तों का परित्याग कर धन्य अनगार स्वर्ग लोक में उत्पन्न हुए यह सब स्पष्ट ही है ।

जब समीप रहने वालों ने देखा कि धन्य अनगार अपनी इह-लीला सवरण कर स्वर्ग को प्राप्त हो गये हैं तो उन्होंने परिनिर्वाण-प्रत्ययक कायोत्सर्ग क्रिया अर्थात् 'परिनिर्वाणम्-मरण यत्र, चन्द्ररीरस्य परिष्ठापन तदपि परिनिर्वाण-मेव, तदेव प्रत्ययो-हेतुर्यस्य स परिनिर्वाणप्रत्यय' भाव यह है कि मृत्यु के अनन्तर जो ध्यान किया जाता है उसको परिनिर्वाण प्रत्यय कहते हैं। यहा समीपस्थ स्वविरों ने धन्य अनगार की मृत्यु को देखकर कायोत्सर्ग (ध्यान) किया। फिर उनके वस्त्र-पात्र आदि उपकरण उठाकर लाये और श्री श्रमण भगवान महावीर स्वामी के पाम आकर और उनको धन्य अनगार के समाधि-मरण का समस्त वृत्तान्त सुना दिया और उनके गुणों का गान किया, उनके उपशम-भाव की प्रशंसा की तथा उनके उक्त वस्त्र आदि उपकरण श्री भगवान् को दिला दिये।

इतना सब हो जाने पर श्री गौतम स्वामी ने श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की वन्दना की और उनसे प्रश्न किया कि हे भगवन् ! आपका विनयी शिष्य धन्य अनगार समाधि-मरण प्राप्त कर कहा गया, कहा उत्पन्न हुआ है, वह कितने काल तक उमकी स्थिति होगी और तदनन्तर वह कहा उत्पन्न होगा ? इसके उत्तर में श्री भगवान् ने कहा कि हे गौतम ! मेरा विनयी शिष्य धन्य अनगार समाधि-मरण प्राप्त कर सर्वार्थमिद्ध विमान में उत्पन्न हुआ है, वह उसकी तेतीस सागर-रोपम स्थिति है और वहा से च्युत होकर वह महाविदेह क्षेत्र में मोक्ष प्राप्त करेगा अर्थात् मिद्ध, बुद्ध और मुक्त होकर परिनिर्वाण-पद प्राप्त कर सब दुःखों का अन्त कर देगा। यह सुनकर श्री गौतम भगवान परम प्रसन्न हुए।

इस सूत्र से हमें शिक्षा प्राप्त होती है कि प्रत्येक व्यक्ति को आलोचना आदि क्रिया करके समाधि-पूर्वक मृत्यु प्राप्त करनी चाहिए जिससे वह मद्या आराधक होकर मोक्षाधिकारी बन सके।

इस प्रकार श्री सुधर्मा स्वामी श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं कि हे जम्बू ! जिम प्रकार मैंने उक्त अध्ययन का अर्थ श्रवण किया है उसी प्रकार तुम्हारे प्रति कहा है अर्थात् मेरा यह कथन केवल भगवान् के कथन का अनुवाद मात्र है। इसमें अपनी बुद्धि से कुछ भी नहीं कहा।

तृतीय वर्ग का प्रथमाध्ययन समाप्त ।

अत्र सूत्रकार उक्त ऋग ने ज्ञेय अध्ययना का वर्णन करते हैं —

जति णं भंते ! उक्खेवओ । एवं खलु जंवू । तेणं कालेणं तेणं समएणं काकंदीए णगरीए भद्दाणामं सत्थवाही परिवसति अड्ढा० तीसे णं भद्दाए सत्थवाहीए पुत्ते सुणक्खत्ते णामं दारए होत्था अहीण० जाव सुख्वे० पंचधाति-परिक्खते जहा धण्णो तहा वत्तीस दाओ जाव उप्पिं पासायवडेंसए विहरति । तेणं कालेणं २ समोसरणं जहा धन्नो तहा सुणक्खत्तेऽवि णिग्गते जहा थावच्चा-पुत्तस्स तहा णिक्खमणं जाव अणगारे जाते ईरिया-समिते जाव वंभयारी । तते णं सुणक्खत्ते अणगारे जं चेव दिवसं समणस्स भगवतो म० अंतिते मुंडे जाव पव्वतिते तं चेव दिवसं अभिग्गहं । तहेव जाव विलमिव आहारेति संजमेण जाव विहरति । बहिया जणवय-विहारं विहरति । एक्कारसं अंगाडं अहिज्जति संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरति । तते णं से सुण० ओरालेणं जहा खंदतो ।

यदि नु भदन्त ! उत्क्षेप । एव खलु जम्बु । तस्मिन् काले तस्मिन् समये काकन्द्या नगर्यां भद्रा नाम सार्यवाहिनी परिवसति, आढ्या० । तस्या नु भद्राया सार्यवाहिन्या पुत्र-सुनक्षत्रो नाम दारकोऽभूत् । अहीनो यावत्सुरूप पञ्च-धातु-

परिक्षिप्तो यथा धन्यस्तथा । द्वात्रिंशद् दातानि यावदुपरि प्रासा-
दावतशके विहरति । तस्मिन् काले तस्मिन् समये समवशरणम् ।
यथा धन्यस्तथा सुनक्षत्रोऽपि निर्गतः । यथा स्त्यावत्यापुत्रस्य
तथा निष्क्रमणम् । यावदनगारो जात ईर्या-समितो यावद् ब्रह्म-
चारी । ततो नु स सुनक्षत्रोऽनगारो यस्मिन्नेव दिवसे श्रमणस्य
भगवतो महावीरस्यान्तिके मुण्डो भूत्वा प्रव्रजितस्तस्मिन्नेव
दिवसेऽभिग्रहम् । तथैव यावद् विलमिव आहारयति । बहिर्जन-
पद-विहार विहरति । एकादशाङ्गान्यधीते, सयमेन तपसात्मान
भावयन् विहरति । ततो नु स सुनक्षत्र औदार्येण यथा स्कन्दकः ।

पदार्थान्वय — जति-यदि ण-पुत्रत्वं वाक्यालङ्कार के लिए है भते !-
हे भगवन् ! उक्त्वैवग्रो-आक्षेप से जान लेना चाहिए अर्थान् प्रथम अध्ययन का
यह अथ प्रतिपादन किया है तो द्वितीय अन्ति का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है
इत्यादि पूर्व सूत्रों से आक्षेप नर लेना चाहिए । एव-उस प्रकार सल्लु-निश्चय से
जन्-हे जन्म ! तेण कालेण-उम काल और तेण समयेण-उस समय काकडीए-
कान्दी शगरीए-नगरी में भद्रा-भद्रा गामं-गाम वाली सत्यवाही-मार्थवाहिनी
परिवसति-रहती थी जो अष्टा०-सर्वमम्पत्रा थी । ण-पूर्वत् तसे-उम भद्राए-
भद्रा मत्यवाहीए-मार्थवाहिनी का पुत्ते-पुत्र सुणक्पत्त-सुनक्षत्र गाम-नाम वाला
दारण-बालक होता-हुआ जो अहीण०-पाचों इन्द्रियों से परिपूर्ण था और जाव-
यावत् सुरूवे-सुरूप था पचधातिपरिक्पत्ते-उह पाच धाया के लालन-पालन में
था जहा-जैसे धरणे-धन्यकुमार के हुए थे इसी प्रकार वृत्तीयाग्रो-वृत्तीस दाग्रो-
कन्याओं से विवाह हुए और उनसे पितृ-गृह से वृत्तीम वहेज आये । जाव-यावत्
उप्यि-ऊपर पासायवडेमए सर्व-श्रेष्ठ प्रामाद म सुरगो ना अनुभव करता हुआ
विहरति-विचरता था । तेण कालेण २-उम काल और उस समय में समोमरण-
श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी उस नगरी के बाहर सहस्रावन उद्यान में विरा-
जमान हुए । जहा-जिस प्रकार धरणो-वन्य कुमार निकला था तथा-उसी प्रकार

सुणक्षत्रेऽपि—सुनक्षत्र कुमार भी शिगते—श्री भगवान् के सुगारत्रिन् से धर्म-रक्षा सुनने के लिये निकला और धर्म रक्षा सुनने के अनन्तर जहा—जिस प्रकार यावत्त्वा पुत्रस्म—स्त्यायत्या पुत्र का हुआ था तहा—उसी प्रकार सुनक्षत्र कुमार का भी-निम्नमण—निष्मण (दीक्षामहोत्सव) हुआ जाव—यावत् वह भी सासारिक सब सुग और सम्पत्ति को छोड़कर अणगारे—अनगर अर्थात् साधु जाते—हो गया और ईरियासमिते—ईर्या समिति वाला जाव—यावत् अन्य साधु के गुणो से युक्त हो कर वभयारी—ब्रह्मचारी हो गया । तते—उमने अनन्तर श—पूर्ववत् वाक्यालङ्कार के लिये है से—उह सुणक्षत्रे—सुनक्षत्र अणगार—अनगर ज चेव दिवस—जिसी दिन ममणस्म—श्रमण भगवतो म०—भगवान् महावीर के अति—समीप मुडे—मुण्डित हुआ जाव—यावत् त चेव दिवस—उसी दिन अभिगह—अभिग्रह धारण कर लिया तहेव—उसी प्रकार जाव—यावत् जो कुठ भी भिक्षा से प्राप्त करता था उसको निलमिव—सर्प जिस प्रकार त्रिना प्रयास के त्रि मे घुम जाता है उसी प्रकार वह भी आहारेति—त्रिना त्रिसी लालसा और स्वाद के भोजन करता था और सजमेण जाव—सयम और तप से अपनी आत्मा की भावना करते हुए विहरति—विचरण करता था । इसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी बहिया—बाहर जणवयविहार—जनपद विहार के लिये विहरति—गये और इस बीच म सुनक्षत्र अनगार नं एकारस—एकादश अगाड—अङ्गो का अहिज्जति—अध्ययन क्रिया फिर सजमेण—सयम और तवसा—तप से अप्पाण—अपनी आत्मा की भावेमाणे—भावना करते हुए विहरति—विचरण करने लगा । तते श—इसके अनन्तर से—उह सुणक्षत्रे—सुनक्षत्र अनगार थोरालेण—उदार तप से जहा—जैसा खदतो०—स्नन्दक था वैसा ही हो गया ।

मूलार्थ—हे भगवन् ! इत्यादि प्रश्न का पहले सूत्रों से आक्षेप कर लेना चाहिए । (उत्तर में मुधर्मा स्वामी कहते हैं) हे जम्बू ! उस काल और उस समय में काकन्दी नाम की नगरी थी । उसमें भद्रा नाम की एक सार्थवाहिनी निवास करती थी । वह धन धान्य-सम्पन्ना थी । उस भद्रा सार्थवाहिनी का पुत्र सुनक्षत्र नाम वाला था । वह सर्वाङ्ग-सम्पन्न और सुरूप था । पाच धाइया उसके लालन पालन के लिये नियत थी । जिस प्रकार धन्य कुमार के लिए पचीस दहेज आये उसी प्रकार सुनक्षत्र कुमार के लिये भी आये और वह सर्व-श्रेष्ठ भवनो में सुख का अनुभव करता हुआ विचरण करने लगा । उसी समय श्री भगवान् महावीर

स्वामी काकन्दी नगरी के बाहर विराजमान हो गये । जिस प्रकार धन्य कुमार उनके मुस्तागविन्द से धर्म तथा सुनने के लिए गया था उसी प्रकार सुनक्षत्र कुमार भी गया और जिम प्रकार स्त्यावत्यापुत्र दीक्षित हुआ था उसी प्रकार वह भी हो गया । अनगार होकर वह ईर्ष्या-ममिति वाला और साधु के सब गुणों में युक्त पूर्ण ब्रह्मचारी हो गया । इसके अनन्तर वह सुनक्षत्र अनगार किसी दिन मुष्टिदत्त ही प्रयोजित हुआ उसी दिन से उमने अभिग्रह धारण कर लिया । फिर जिम प्रकार गर्भ त्रिल में प्रवेश करता है उसी प्रकार वह भोजन करने लगा । मयम और तप में अपनी आत्मा की भावना करते हुए विचरण करने लगा । इसी बीच श्री भगवान् महावीर स्वामी जनपद विहार के लिये बाहर गये और सुनक्षत्र अनगार ने एकादशाङ्ग शास्त्र का अध्ययन किया । वह मयम और तप से अपनी आत्मा की भावना करते हुए विचरण करने लगा । तदनु अत्यन्त क्रुद्ध तप के कारण जिम प्रकार स्कन्दक कृश हो गया था उसी प्रकार सुनक्षत्र अनगार भी हो गया ।

टीका—इस सूत्र में सुनक्षत्र अनगार का वर्णन किया गया है । सूत्र का अर्थ मूलार्थ में ही स्पष्ट कर दिया गया है । उदाहरण के लिये सूत्रकार ने स्त्यावत्यापुत्र और धन्य अनगार को लिया है । पाठकों को स्त्यावत्यापुत्र के विषय में जानने के लिये 'ज्ञाताधर्म कथाङ्गसूत्र' के पाचवें अध्ययन का विधि-पूर्वक अध्ययन करना चाहिए और धन्य अनगार का वर्णन इसी वर्ग के प्रथम अध्ययन में आ चुका है ।

इस सूत्र में प्रारम्भ में ही "उक्तेवओ-उक्षेप" एक पद आया है । उसका तात्पर्य यह है कि इसके साथ के पाठ का पिछले सूत्रों से आक्षेप कर लेना चाहिए अर्थात् उनके स्थान पर निम्न लिखित पाठ पढ़ना चाहिए —

“जति ण भते । समणेण भगवया महावीरेण जाव सपत्तेण नयमस्स अगस्स अणुत्तरोयवाइयदसाण तच्चस्स उग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्म अयमट्ठे पण्णत्ते नयमस्स ण भते । अगस्स अणुत्तरोयवाइयदसाण तच्चस्म उग्गस्म वितियस्म अज्झयणस्म के अट्ठे पण्णत्ते ? (यदि नु भदन्त । धमणेण भगवता महावीरेण यावत्सपत्तेण नयमस्याङ्गस्याणुत्तरोपपातिरुदसाना तृतीयस्य वर्गस्य प्रथमस्याध्ययनस्यायमर्थं प्रहस्य ,

सुणकपत्तेऽपि—सुनक्षत्र कुमार भी शिगते—श्री भगवान् के मुत्तारविन्द से धर्म-कथा सुनने के लिये निम्ला और धर्म-कथा सुनने के अनन्तर जहा—जिम प्रकार यावद्या पुत्रस्म—स्वावत्या पुत्र का हुआ था तहा—उसी प्रकार सुनक्षत्र कुमार का भी—निक्खमण—निष्क्रमण (दीश्वामहोत्सव) हुआ जाव—यावत् वह भी सामारिक सत्र सुग्न और सम्पत्ति को डोडर अणुगारे—अनगार अर्थात् साधु जाते—हो गया और ईरियासमिते—ईर्या—समिति वाला जाव—यावत् अन्य साधु के गुणों से युक्त हो कर बभयारी—ब्रह्मचारी हो गया । तते—इसके अनन्तर ण—पूर्ववत् वाक्यालङ्कार के लिये है से—वह सुणकपत्ते—सुनक्षत्र अणुगारे—अनगार ज चेव दिवस—जिसी दिन समणस्म—श्रमण भगवतो म०—भगवान् महावीर के अतिए—समीप मुडे—मुण्डित हुआ जाव—यावत् त चेव दिवस—उसी दिन अभिगह—अभिग्रह धारण कर लिया तहेव—उसी प्रकार जाव—यावत् जो डुठ भी भिष्वा से प्राप्त करता था उसको निलमिव—सर्प जिस प्रकार बिना प्रयास के त्रिल में घुस जाता है उसी प्रकार वह भी आहारेति—निता त्रिभी लालसा ओर स्वाद के भोजन करता था और मज्जेण जाव—सयम और तप से अपनी आत्मा की भावना करते हुए विहरति—विचरण करता था । इसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी बहिया—बाहर जणवयविहार—जनपद विहार के लिए विहरति—गये और इस बीच में सुनक्षत्र अनगारन एकारम—एकादश अगाइ—अन्नो का अहिज्जति—अध्ययन किया फिर सज्जेण—सयम और तवसा—तप से अप्पाण—अपनी आत्मा की भावेमाणे—भावना करते हुए विहरति—विचरण करने लगा । तते ण—इसके अनन्तर से—वह सुणकपत्ते—सुनक्षत्र अनगार ओरालेण—उदार तप से जहा—जैसा खदतो०—स्कन्दक था वैसा ही हो गया ।

मूलार्थ—हे भगवन् ! इत्यादि प्रश्न का पहले सूत्रों से आक्षेप कर लेना चाहिए । (उत्तर में सुधर्मा स्वामी कहते हैं) हे जम्बू ! उस काल और उस समय में काकन्दी नाम की नगरी थी । उसमें भद्रा नाम की एक सार्थवाहिनी निवास करती थी । वह धन धान्य-सम्पन्ना थी । उम भद्रा सार्थवाहिनी का पुत्र सुनक्षत्र नाम वाला था । वह सर्वाङ्ग-सम्पन्न और सुरूप था । पाच धाइया उसके लालन पालन के लिये नियत थीं । जिम प्रकार धन्य कुमार के लिए बचीस दहेज आये उसी प्रकार सुनक्षत्र कुमार के लिये भी आये और वह सर्व-श्रेष्ठ भवनों में सुख का अनुभव करता हुआ विचरण करने लगा । उसी समय श्री भगवान् महावीर

स्वामी काकन्दी नगरी के बाहर विराजमान हो गये । जिस प्रकार धन्य कुमार उनके मुखारविन्द से धर्म कथा सुनने के लिए गया था उसी प्रकार सुनक्षत्र कुमार भी गया और जिम प्रकार स्थावत्पापुत्र दीक्षित हुआ था उसी प्रकार वह भी हो गया । अनगार होकर वह ईर्या-भूमिति वाला और साधु के सब गुणों से युक्त पूर्ण ब्रह्मचारी हो गया । इसके अनन्तर वह सुनक्षत्र अनगार किसी दिन मृष्टिदत हो प्रत्रजित हुआ उसी दिन से उसने अभिग्रह धारण कर लिया । फिर जिम प्रकार गर्प तिल में प्रवेश करता है उसी प्रकार वह भोजन करने लगा । मयम और तप से अपनी आत्मा की भावना करते हुए विचरण करने लगा । इसी बीच श्री भगवान् महावीर स्वामी जनपद विहार के लिये बाहर गये और सुनक्षत्र अनगार ने एकादशाङ्ग शास्त्र का अध्ययन किया । वह मयम और तप से अपनी आत्मा की भावना करते हुए विचरण करने लगा । तदनु अत्यन्त कठोर तप के कारण जिम प्रकार स्कन्दक कृश हो गया था उसी प्रकार सुनक्षत्र अनगार भी हो गया ।

टीका—इस सूत्र में सुनक्षत्र अनगार का वर्णन किया गया है । सूत्र का अर्थ मूलार्थ में ही स्पष्ट कर दिया गया है । उदाहरण के लिये सूत्रकार ने स्थावत्पापुत्र और धन्य अनगार को लिया है । पाठकों को स्थावत्पापुत्र के विषय में जानने के लिये 'ज्ञाताधर्म कथाङ्गसूत्र' के पाचवें अध्ययन का विधि-पूर्वक अध्ययन करना चाहिए और धन्य अनगार का वर्णन इसी वर्ग में प्रथम अध्ययन में आ चुका है ।

इस सूत्र में प्रारम्भ में ही “उक्तेवओ—उत्क्षेप ” एक पद आया है । उसका तात्पर्य यह है कि इसके साथ के पाठ का पिछले सूत्रों से आक्षेप कर लेना चाहिए अर्थात् उसके स्थान पर निम्न लिखित पाठ पढ़ना चाहिए —

“जति ण भते ! समणेण भगवथा महावीरेण जान सपत्तेण नवमस्स अगस्स अणुत्तरोववाइयदसाण तच्चस्स उग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते नवमस्स ण भते ! अगमस्स अणुत्तरोववाइयदसाण तच्चस्म उग्गस्स चितियस्म अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ? (यदि नु भदन्त ! श्रमणेण भगवथा महावीरेण यानस्सप्राप्तेन नवम-स्याङ्गस्यानुत्तरोपपातिकण्णशाना तृतीयस्य वर्गस्य प्रथमस्याध्ययनस्थायमर्थं प्रज्ञप्तं,

नवमस्य नु भदन्त । अङ्गस्थानुत्तरोपपातिकदशाना तृतीयस्य वर्गस्य द्वितीयस्याध्ययनस्य कोऽर्थं प्रज्ञप्त ?)

यह पाठ प्रायः प्रत्येक अध्ययन के प्रारम्भ में आता है। अतः उसको सक्षिप्त करने के लिये यहाँ 'उत्क्षेप' पद दे दिया गया है। दूसरे सूत्रों में भी इसी शैली का अनुसरण किया गया है।

जिस प्रकार श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास दीक्षित होकर धन्य अनगार ने पारण के तिन ही आचाम्ल व्रत धारण किया था इसी प्रकार सुनभ्रत्र अनगार ने भी किया। जिस प्रकार 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' के द्वितीय शतक में स्कन्दक सन्यासी ने श्री श्रमण भगवान् के पास ही दीक्षित हो कर तप द्वारा अपना शरीर कृश किया था ठीक उसी प्रकार सुनक्षत्र अनगार का शरीर भी तप से कृश हो गया।

इस सूत्र से हमें यह शिक्षा मिलती है कि जब कोई अपना लक्ष्य स्थिर कर ले तो उसकी प्राप्ति के लिये उसको सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिये और दृढ संकल्प कर लेना चाहिए कि वह उस पद की प्राप्ति करने में बड़े से बड़े कष्ट को भी तुच्छ समझेगा और अपने प्रयत्न में कोई भी शिथिलता नहीं आने देगा। जब तक वह इतना दृढ संकल्प नहीं करता तब तक वह उस तक नहीं पहुँच सकता। किन्तु जो अपने ध्येय की प्राप्ति के लिये एकाम चित्त से प्रयत्न करता है वह अवश्य और शीघ्र ही वहाँ तक पहुँच जाता है, इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं। ध्यान रहे कि इसके लिये गम्भीरता की अत्यन्त आवश्यकता है।

अब सूत्रकार इसीसे सम्बन्ध रखते हुए कहते हैं —

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णगरे, गुण-
सिलए चेतिए, सेणिए राया । सामी समोसठे परिसा
णिग्गता, राया णिग्गतो । धम्म-कहा, राया पडिगओ,
परिसा पडिगता । तते णं तस्स सुणक्खत्तस्स अन्नया
कयाति पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयंसि धम्मजा० जहा खंद-
यस्स वहू वासा परियातो, गोतमपुच्छा, तहेव कहेति जाव

सव्वट्टुसिद्धे विमाणे देवे उववण्णे । तेतीसं सागरोवमाइं
ठिती पणत्ता । से णं भंते । महाविदेहे सिञ्झिहिति ।
एवं सुणक्खत-गमेणं सेसावि अट्ट भाणियव्वा, णवरं
आणुपुव्वीए दोन्नि रायगिहे, दोन्नि साएए, दोन्नि वाणिय-
ग्गामे, नवमो हत्थिणपुरे, दसमो रायगिहे । नवण्हं भद्दाओ
जणणीओ नवण्हवि वत्तीसाओ दाओ । नवण्हं निक्खमणं
थावच्चापुत्तस्स सरिसं, वेहल्लुस्स पिया करोति । छम्मासा
वेहल्लुते, नव धण्णे, सेसाणं बहू वासा, मासं संलेहणा,
सव्वट्टुसिद्धे महाविदेहे सिञ्झणा ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृह नगरम्, गुणशिलक
चैत्यम्, श्रेणिको राजा । स्वामी समवसृतः परिपन्निर्गता, राजा
निर्गतः । धर्म-कथा, राजा प्रतिगतः, परिपत्प्रतिगता । ततो नु
तस्य सुनक्षत्रस्यान्यदा कदाचित् पूर्वरात्रावरात्रकाल-समये धर्म-
जागरिका । यथा स्कन्दकस्य बहूनि वर्षाणि पर्याय । गोतम-
पृच्छा । तथैव कथयति यावत्सर्वार्थसिद्धे विमाने देव उत्पन्न ।
त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा स्थितिः । स नु भदन्त । महाविदेहे
सेत्स्यति । एव सुनक्षत्र-गमेन शेषा अप्यष्ट भणितव्या, नवर-
मानुपूर्व्या द्वौ राजगृहे नगरे, द्वौ साकेते, द्वौ वाणिजग्रामे, नवमो
हस्तिनापुरे, दशमश्च राजगृहे । नवानां जनन्यो भद्रा नवानामपि
द्वात्रिंशद् दातानि, नवानां निष्क्रमण स्त्यावत्यापुत्रस्य सदृशम् ।
वेहल्लुस्य पिता करोति । पणमासा वेहल्लुक, नव धन्यः, शेषाणां

वहूनि वर्षाणि । मासं सलेखना, सर्वार्थसिद्धे, महाविदेहे सिद्धता ।

पदार्थान्वय -तेषु कालेषु-उस काल और तेषु समेषु-उस समय रायगिहे-
राजगृह श्वरे-नगर मे सेणिए-श्रेणि नाम वाला राया-राजा राज्य करता था उस
के बाहर गुणमिलिए-गुणशिल्प चेतिए-चैत्य था सामी-श्री श्रमण भगवान् महा
वीर स्वामी उस चैत्य में समोमदे-विराजमान हो गये । तब परिमा-नगर की जनता
शिगता-उनके मुख से धर्म-कथा सुनने के लिये निकली राया-राजा श्रेणि भी
शिगतो-निकला धम्मरुहा-धर्म-कथा हुई और राया-राजा पडिगयो-चला गया
परिसा-परिपद् पडिगता-चली गई । तते-इसके अनन्तर श्वा-शक्यालकार के लिये है
तस्म-उस मुखपत्रतस्म-सुनक्षत्र अनगार अन्नया-अन्यदा कयाति-किसी समय
पुव्वरत्ताजरत्तकालसमयसि-मध्यरात्रि के समय में धम्मजा० धर्म-जागरण करते हुए
जहा-जैमा स्रदयस्म-स्रन्दक के विषय में कहा गया उसी प्रकार बहू-बहुत से वामा-
वर्षों तक परियातो-पर्याय पालन कर काल-गत हो गया । तत्र गौतमपुच्छा-
गौतम स्वामी ने प्रश्न किया तहेव-श्री भगवान् ने उसी प्रकार कहेति-प्रतिपादन
किया कि जाव-यावत् सब्बसिद्धे-सर्वार्थसिद्ध विमाणे-विमान में देवे-देव-रूप
से उववण्णे-उत्पन्न हुआ है तेत्तीस-तेतीस सागरोवमाइ-सागरोपम की ठिती-
स्थिति पणत्ता-प्रतिपादन की गई है । भते-हे भगवन् ! से-वह वहा से न्युत
होकर कहा उत्पन्न होगा ? हे गौतम ! महाविदेहे-महाविदेह क्षेत्र में सिज्झिहिति-
सिद्ध होगा । एव-इसी प्रकार मुखपत्रत्तगमेण-सुाक्षत्र के (आलापरु) आरयान के
समान सेमा-शेष अट्ट-आठ के विषय में अवि-भी भाणियव्वा-कहना चाहिए ।
श्वर-विशेषता इतनी है कि आणुपुव्वीए-अनुक्रम से दोन्नि-दो रायगिहे-
राजगृह नगर मे दोन्नि-दो साएए-माकेतपुर में दोन्नि-दो वाणियम्मामे-वाणिज-
प्राम में नवमो-नौवा हत्थिणपुरे-हस्तिनापुर मे और दसमो-दशवा रायगिहे-
राजगृह नगर में उत्पन्न हुए नवसह-नौ की भदायो-भद्रा नाम वाली जण्णीओ-
माताए थीं नवएहवि-नौ की वत्तीमाओ-वत्तीस दाओ-दहेज आये नवण्ह-नौ का
निकखमण-निष्क्रमण धावचापूत्तस्स-स्त्यावत्यापुत्र के सरिस-सदृश हुआ किन्तु
वेहल्लस्म-वेहल्ल कुमार का निष्क्रमण पिया-पिता ने करेति-किया । फिर छम्मासा-
छ मास की दीक्षा वेहल्लते-वेहल्ल अनगार ने पालन की और धण्णे-धन्य अनगार

ने नव-नौ महीने की दीक्षा पालन की समाप्त-शेष आठों की दीक्षा यह वामा-
बहुत वर्षों की थी । मास-एक मास की सलेहखा-सलेहना सब ने की मन्वद्विमिद्धे-
सर्वार्थसिद्ध विमान म सब उत्पन्न हुए महाविदेहे-महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि-
सब सिद्ध गति प्राप्त करेंगे ।

मूलार्थ—उम काल और उम समय राजगृह नगर में श्रेणिक राजा
राज्य करता था । नगर के गहर गुणशैलक नाम चैत्य में श्रमण भगवान् महावीर
स्वामी विराजमान होगये । परिपद् धर्म कथा सुनने को आई और राजा भी
आया । धर्म कथा सुनकर परिपद् और राजा चले गये । तदनु मध्यरात्रि के
समय धर्म-जागरण करते हुए सुनकर अनगार को स्कन्दक के समान भाव उत्पन्न
हुए । वह बहुत वर्ष की दीक्षा पालन कर सर्वार्थसिद्ध विमान में देव-रूप से
उत्पन्न हो गया । उमकी वहा पर तैत्थिय मागरोपम की आयु है । वहा से च्युत
होकर वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेगा । इसी प्रकार शेष आठ अध्ययनों
के विषय में भी जानना चाहिए । विशेषता केवल इतनी है कि अनुक्रम से दो
राजगृह नगर में, दो साकेतपुर में, दो वाणिक-ग्राम में, नौवाँ हस्तिनापुर में और
दशवा राजगृह नगर में उत्पन्न हुए । इनमें नौ की माताए भद्रा नाम वाली थीं
और नौ को वत्सीय २ दहेज मिले । नौ का निष्क्रमण स्थावत्यापुत्र के समान
हुआ । केवल वेहल्लकुमार का निष्क्रमण उमके पिता के द्वारा हुआ । छ मास
का दीक्षा पर्याय वेहल्ल अनगार ने पालन किया, नौ मास का धन्य ने । शेष आठों
ने बहुत वर्ष तक दीक्षा-पर्याय पालन किया । दशों ने एक २ मास की सलेहना
धारण की । सब के सब सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए और वहा से च्युत
होकर सब महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि-गति प्राप्त करेंगे ।

टीका—इस सूत्र का विषय मूलार्थ और पदार्थान्वय में ही स्पष्ट है ।
अतः उसको यहा पर दोहराना ठीक प्रतीत नहीं होता ।

कहना केवल इतना है कि यहा बार-बार स्कन्दक को ही उदाहरण-रूप में
रखा गया है, उसका ज्ञान हमें वहा से हो । इसी प्रकार स्थावत्यापुत्र के विषय
में भी कहना आवश्यक जान पड़ता है । इनमें से पहले अर्थात् स्कन्दक स्वामी का
वर्णन पञ्चम अङ्ग के द्वितीय शतक में आचुका है और दूसरे अर्थात् स्थावत्यापुत्र

वहूनि वर्षाणि । मासं सलेखना, सर्वार्थसिद्धे, महाविदेहे सिद्धता ।

पदार्थान्तरय —तेषु कालेषु—उस काल और तेषु समेषु—उस समय रायगिहे—राजगृह शगरे—नगर में सेणिए—श्रेणिक नाम वाला राया—राजा राज्य करता था उस के बाहर गुणमित्तए—गुणशिलक चैतिए—चैत्य था सामी—श्री श्रमण भगवान् महा वीर स्वामी उस चैत्य में समोमढे—विराजमान हो गये । तब परिसा—नगर की जनता शिगगता—उनके मुख से धर्म कथा सुनने के लिये निकली राया—राजा श्रेणिक भी शिगगतो—निकला धम्मकहा—धर्म-कथा हुई और राया—राजा पडिगओ—चला गया परिसा—परिपद् पडिगता—चली गई । तते—इसके अनन्तर णु—वाक्यालंकार के लिये है तस्म—उस सुणक्कत्तस्म—सुनक्षत्र अनगार अन्नया—अन्यदा कयाति—किसी समय पुन्वरत्तात्तत्तकालसमयसि—मध्यरात्रि के समय में धम्मजा० धर्म-चागरण करते हुए जहा—जैसा रुदयस्म—स्वन्दक के विषय में कहा गया उसी प्रकार बहू—बहुत से वामा—वपों तक परियातो—पर्याय पालन कर काल-गत हो गया । तत्र गौतमपुच्छा—गौतम स्वामी ने प्रश्न किया तहेव—श्री भगवान् ने उसी प्रकार कहेति—प्रतिपादन किया कि जाव—यावत् सब्बट्टसिद्धे—सर्वार्थसिद्ध विमाणे—विमान में देवे—देव-रूप से उववण्णे—उत्पन्न हुआ है तेत्तीस—तेतीस सागरोवमाइ—सागरोपम की ठिती—स्थिति पण्णत्ता—प्रतिपादन की गई है । भते—हे भगवन् ! से—वह वहा से च्युत होकर कहा उत्पन्न होगा ? हे गौतम ! महाविदेहे—महाविदेह क्षेत्र में सिद्धिहिति—सिद्ध होगा । एव—इसी प्रकार सुणक्कत्तगमेण—सुाक्षत्र के (आलापक) आरयान के समान सेमा—शेष अट्ट—आठ के विषय में अवि—भी भाणियव्वा—कहना चाहिए । शवर—विशेषता इतनी है कि आणुपुव्वीए—अनुक्रम से दोन्नि—दो रायगिहे—राजगृह नगर में दोन्नि—दो साएए—साकेतपुर में दोन्नि—दो वाणियगामे—वाणिज-ग्राम में नवमो—नौवा हत्थिणपुरे—हस्तिनापुर में और दममो—दशवा रायगिहे—राजगृह नगर में उत्पन्न हुए नवएह—नौ की भदाओ—भद्रा नाम वाली जण्णीओ—माताए थीं नवएहवि—नौ की बत्तीसाओ—बत्तीस दाओ—दहेज आये नवण्ह—नौ का निक्खमण—निष्क्रमण थावच्चापुत्तस्म—स्त्यावत्यापुत्र के सरिस—सदृश हुआ किन्तु वेहल्लस्म—वेहल्ल कुमार का निष्क्रमण पिया—पिता ने करेति—किया । फिर छम्मासा—छ मास की दीक्षा वेहल्लते—वेहल्ल अनगार ने पालन की और धण्णे—धन्य अनगार

ने नव-नौ महीने की दीक्षा पालन की सेमाण-शेष आठों की दीक्षा यह वामा-बहुत वर्षों की थी । मास-एक मास की सलेहणा-सलेखना सब ने की सञ्चट्टमिद्धे-सर्वार्थसिद्ध विमान में सब उत्पन्न हुए महाविदेहे-महाविदेह क्षेत्र में सिञ्जणा-सब सिद्ध गति प्राप्त करेंगे ।

मूलार्थ—उस काल और उम समय राजगृह नगर में श्रेणिक राजा राज्य करता था । नगर के बाहर गुणशैलक नाम चैत्य में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विराजमान होगये । परिपद् धर्म कथा सुनने को आई और राजा भी आया । धर्म कथा सुनकर परिपद् और राजा चले गये । तदनु मध्यरात्रि के समय धर्म-जागरण करते हुए मुनचत्र अनगार को स्कन्दक के समान भाव उत्पन्न हुए । वह बहुत वर्ष की दीक्षा पालन कर सर्वार्थमिद्ध विमान में देव-रूप से उत्पन्न हो गया । उमकी वहा पर तेतीम मागरोपम की आयु है । वहा से च्युत होकर वह महाविदेह क्षेत्र में मिद्धि प्राप्त करेगा । उसी प्रकार शेष आठ अध्वयनों के विषय में भी जानना चाहिए । विशेषता केवल इतनी है कि अनुक्रम से दो राजगृह नगर में, दो सांजतपुर में, दो वाणिज-ग्राममें, नौवाँ हस्तिनापुर में और दशावा राजगृह नगर में उत्पन्न हुए । इनमें नौ की माताए भद्रा नाम वाली थी और नौ को नचीस २ देहेज मिले । नौ का निष्क्रमण स्त्यावत्यापुत्र के समान हुआ । केवल वेहल्लकुमार का निष्क्रमण उमके पिता के द्वारा हुआ । छ मास का दीक्षा-पर्याय वेहल्ल अनगार ने पालन किया, नौ मास का धन्य ने । शेष आठों ने बहुत वर्ष तक दीक्षा-पर्याय पालन किया । दशा ने एक २ मास की सलेखना धारण की । सब के सब सर्वार्थमिद्ध विमान में उत्पन्न हुए और वहा से च्युत होकर सब महाविदेह क्षेत्र में मिद्ध-गति प्राप्त करेंगे ।

टीका—इस सूत्र का विषय मूलार्थ और पदार्थान्वय में ही स्पष्ट है । अतः उसमें यहा पर दोहराना ठीक प्रतीत नहीं होता ।

कहना केवल इतना है कि यहा बार-बार स्कन्दक को ही उदाहरण रूप में रखा गया है, उसका ज्ञान हमें कहा से हो । इसी प्रकार स्त्यावत्यापुत्र के विषय में भी कहना आवश्यक जान पडता है । इनमें से पहले अर्थात् स्कन्दक स्वामी का वर्णन पञ्चम अङ्ग के द्वितीय शतक में आचुका है और दूसरे अर्थात् स्त्यावत्यापुत्र

ना वर्णन उठे अङ्ग के पञ्चम अध्ययन में है। यह 'अनुत्तरोपपातिकसूत्र' नौवा अङ्ग है। अतः सूत्रकार ने उसी वर्णन को यहाँ पर दोहराना उचित न समझ कर केवल दोनों का उदाहरण देकर घात समाप्त कर दी है। पाठकों को इनके विषय में पूरा ज्ञान प्राप्त करने के लिये उक्त सूत्रों का अवश्य अध्ययन करना चाहिए। तब भी पाठकों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए हम इतना बता देना आवश्यक समझते हैं कि उक्त कुमारों के जीवन में श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास धर्म-तथा सुनने को जाना, यहाँ वैराग्य की उत्पत्ति, दीक्षा महोत्सव, परम उच्चोक्ति तथा तप कर्म, शरीर का कृश होना, उसी के कारण अर्ध रात्रि में धर्म-जागरण करते हुए अनशन व्रत के भावा का उत्पन्न होना, अनशन कर मर्त्यार्थ-सिद्धि (व्रत) में उत्पन्न होना, जिससे महाविदेहादि क्षेत्रों में उत्पन्न होकर सिद्ध-गति प्राप्त कर सकें आदि ही मोटी बातें हैं, चिनत्ने आधार से उक्त सूत्रों के स्वाध्याय में महायत्ना मिल सकती है, क्योंकि यही विषय हैं चिनत्ने लिए सन्दक और स्त्याजत्यापुत्र को उदाहरण में रखा है।

इस सूत्र में 'पूर्वरात्रापरान्ताल' शब्द आया है जिसका अर्थ मध्य रात्रि है। यही समय एक ऐसा है जब सागर समाप्त प्रायः सुनमान रहता है। अतः धर्म-जागरण करने वालों का चित्त इस समय एकाग्र हो जाता है और उसमें पूर्ण स्थिरता विद्यमान होती है। ऐसे ही समय में विचार-वारा बहुत स्पष्ट रहती है और मस्तिष्क में बहुत उच्च विचार उत्पन्न होते हैं। यही कारण है कि धन्य आदि अनगणों के उम्र समय के विचार उनको सन्मार्ग की ओर ले गये।

सूत्र में द्विवचन के स्थान में 'द्वोत्रि' बहुवचन का प्रयोग हुआ है। इसका कारण यह है कि प्राकृत भाषा में द्विवचन होता ही नहीं।

अब सूत्रकार प्रस्तुत सूत्र का उपसंहार करते हुए कहते हैं —

एवं खलु जंबू । समणेणं भगवता महावीरेणं आङ्ग-
रेणं तित्थगरेणं सयं-संबुद्धेणं लोग-नाहेणं लोग-प्पदीवेणं
लोग-पज्जोयगरेणं अभय-दएणं सरण-दएणं चक्खु-दएणं
मग्ग-दएणं धम्म-दएणं धम्म-देसएणं-धम्मवर-चाउरंत-

चक्र-वट्टिणा अप्पडिहय-वरणाण-दंसण-धरेणं जिणेणं जाण-
एणं बुद्धेणं वोहएणं मोक्केणं मोयएणं तिन्नेणं तारयेणं सि-
वमयलमरुयमणंतमक्खयमव्वावाहमपुणरावत्तयं सिद्धि-
गतिनामधेयं ठाणं संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं तच्चस्स
वग्गस्स अयमट्ठे पन्नत्ते । (सूत्रं ६) अणुत्तरोववाइयद-
सातो समत्तातो ॥ अणुत्तरोववाइयदसा णामं सुत्तं नवम-
मंगं समत्तं ॥ श्रीरस्तु ॥ अं १९२ ।

एव खलु जम्बु ! श्रमणेन भगवता महावीरेणादिकरेण
तीर्थकरेण स्वयं सम्बुद्धेन लोक-नाथेन लोक-प्रदीपेन लोक-प्रद्योत-
करेणाभय-देन शरण-देन चक्षुर्देन मार्ग-देन धर्म-देन धर्म-देशकेन
धर्मवर-चतुरत्त-चक्रवर्तिनाप्रतिहत-वरज्ञान-दर्शन-धरेण जिनेन
ज्ञापकेन बुद्धेन बोधकेन मुक्तेन मोचकेन तीर्णेन तारकेण शिवम-
चलमरुजमनन्तमक्षयमव्यावाधमपुनरावर्तनं सिद्ध-गति-नामधेय
स्थान सप्राप्तेनानुत्तरोपपातिकदशानां तृतीयस्य वर्गस्यायमर्थ-
प्रज्ञप्तः । (सूत्रम् ६) अनुत्तरोपपातिकदशा. समाप्ता ॥ अनु-
त्तरोपपातिकदशा नाम नवममङ्ग समाप्तम् ॥ श्रीरस्तु ॥

पदार्थान्वय — एव-इस प्रकार खलु-निश्चय से जम्बू-हे जम्बू ! समणेण-
श्री श्रमण भगवता-भगवान् महावीरेण-महावीर स्वामी ने जो आइगरेण-धर्म
के प्रवर्तक हैं तित्थगरेण-चार तीर्थों को स्थापन करने वाले हैं मय-मनुद्धेण-अपने
आप बोध प्राप्त करने वाले हैं लोगनाहेण-तीनों लोकों के नाथ हैं लोकरुपदावेण-
लोक में प्रदीप के समान प्रकाश करने वाले हैं लोगपब्बजोयगरेण-लोकों को सूर्य
के समान प्रदीप करने वाले हैं अभयदएणं-अभय प्रदान करने वाले हैं मरणदएणं-

शरण देने वाले हैं चक्रसुदण्ड-लोगों को ज्ञान चक्षु देने वाले हैं धम्मदण्ड-
 उनको श्रुत और चारित्र रूप धर्म देने वाले हैं मग्गदण्ड-और अज्ञान रूपी
 अन्धकार से मुक्ति मार्ग दिखाने वाले हैं धम्मदेमण्ड-धर्मोपदेशक हैं धम्मवरचाउ-
 रतचक्रवट्टिणा-श्रेष्ठ धर्म के एकमात्र चक्रवर्ती हैं अप्पडिहिय-अप्रतिहत वर-श्रेष्ठ
 नाथ-ज्ञान दसण-दर्शन धरेण-धारण करने वाले हैं जिणेण-राग और द्वेष को
 जीतने वाले हैं जाणण-उच्चस्थ ज्ञान चतुष्टय को जानने वाले हैं धुद्धेण-बुद्ध हैं
 अर्थात् जीव आदि पदार्थों को जानने वाले हैं बोहण-औरों को बोध कराने
 वाले हैं मोक्केण-नाह और आभ्यन्तर परिग्रह से मुक्त हैं मोयण-अन्य जीवों
 को इस परिग्रह से मुक्त कराने वाले हैं तिन्नेण-ससार-रूपी सागर को पार करन
 वाले हैं तारयेण-और उपदेश के द्वारा औरों को इससे पार कराने वाले हैं
 सिव-सर्वथा कल्याण-रूप अयल-नित्य स्थिर अरुय-शारीरिक और मानसिक
 रोग और व्यथाओं से रहित अण्ण-अन्त-रहित अक्खय-जमी मी नाश न होने
 वाले अन्वावाह-पीडा अर्थात् मत्र प्रकार के दुखों से रहित अपुनरावचय-
 सासारिक जन्म मरण के चक्र से रहित सिद्धिगति-सिद्ध-गति नामधेय-नाम वाले
 ठाण-स्थान को सपत्तेण-प्राप्त हुए उन्होंने अणुत्तरोववाइयदसाण-अनुत्तरोप-
 पातिकदशा के तच्चस्म-तृतीय वर्गस्म-वर्ग का अय-यह अट्टे-अथ पण्णत्ते-
 प्रतिपादन किया है सूत्र ६-छठा सूत्र समाप्त हुआ अणुत्तरोववाइयदमातो-अनुत्तरो-
 पपातिकदशा समत्तातो-समाप्त हुई अणुत्तरोववाइयदसा णाम-अनुत्तरोपपातिक-
 दशा नाम का सुत्त-सूत्र रूप नवममग-नौवा अद्ग समत्त-समाप्त हुआ ।

मूत्रार्थ—हे जम्भू ! इम प्रकार धर्म प्रवर्तक, चार तीर्थ स्थापन करने वाले,
 स्वयं बुद्ध, लोग नाथ, लोकों को प्रकाशित और प्रदीप्त करने वाले, अभय प्रदान
 करने वाले, शरण देने वाले, ज्ञान-चक्षु प्रदान करने वाले, मुक्ति का मार्ग
 दिखाने वाले, धर्म देने वाले, धर्मोपदेशक, धर्मवर चतुरन्त चक्रवर्ती, अनभिभूत
 श्रेष्ठ ज्ञान और दर्शन वाले, राग द्वेष के जीतने वाले, ज्ञापक, बुद्ध, बोधक, मुक्त,
 मोचक, स्वयं सवार-मागर से तैरने वाले और दूसरा को तगाने वाले, कल्याण
 रूप, नित्य स्थिर, अन्त रहित, विनाश-रहित, शारीरिक और मानसिक आधि-
 व्याधि-रहित, पुन पुन मामारिक जन्म मरण से रहित सिद्ध गति नामक स्थान
 को प्राप्त हुए श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अनुत्तरोपपातिकदशा के

तृतीय वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है । छठा सूत्र ममाप्त हुआ । अनुत्तरो-
पपातिकदशा ममाप्त हुई । अनुत्तरोपपातिकदशा सूत्र नामक नवमञ्ज
समाप्त हुआ ।

टीका—यह सूत्र उपसहार-रूप है । इससे सत्र से पहले हमे यह शिक्षा
मिलती है कि प्रत्येक शिष्य को पूर्ण-रूप से गुरु-भक्त होना चाहिए और गुरु-भक्ति
करते हुए गुरु के सद्गुणों को अवश्य प्रकट करना चाहिए । जैसे इस सूत्र में श्री
सुधर्मा स्वामी ने, उपसहार करते हुए, श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के सद्-
गुणों को जनता पर प्रकट किया है । वे अपने शिष्य जम्बू से कहते हैं कि हे जम्बू !
इस सूत्र को उन भगवान् ने प्रतिपादन किया है जो आदिकर हैं अर्थात् (आदौ—
प्राथम्येन श्रुतधर्माचारादि ग्रन्थात्मक करोति तदर्थप्रणायकत्वे प्रणयतीत्येवशीलस्तेना-
दिकरेण) श्रुत-धर्म-सम्बन्धी शास्त्रों के प्रणेता हैं, तीर्थङ्कर हैं अर्थात् (तर्गन्ति येन
ससार-सागरमिति तीर्थम्—प्रथचनम्, तद्व्यतिरेकदिह सङ्घ—तीर्थम्, तस्य ऋण-
शीलत्वात्तीर्थकरस्तेन) जिसके द्वारा लोग समार रूपी सागर से पाग हो जाते हैं
उमको तीर्थ कहते हैं । तीर्थ सङ्घ-रूपी चार हैं । उनसे करने वाले महापुरुष ने ही
इस सूत्र के अर्थ का प्रकाश किया है । इसी क्रम से श्री सुधर्मा स्वामी श्री भगवान्
के 'नमोत्थु ण' में प्रदर्शित सब गुणों का दिग्दर्शन यहाँ करते हैं । जब कोई व्यक्ति
सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो जाता है उस समय वह अनन्त और अनुपम गुणों का
धारण करने वाला हो जाता है । उसके गुणों ने अनुकरण करने वाला भी एक
दिन उसी रूप में परिणत हो सकता है । अतः प्रत्येक व्यक्ति को उनका अनुकरण
जहाँ तक हो अवश्य करना चाहिए । यही विशेषतः कारण है कि सुधर्मा स्वामी
ने लोगों की हित-बुद्धि से उन गुणों का यहाँ दिग्दर्शन कराया है, जिससे लोग
भगवान् के गुणों में अनुराग रखते हुए उनकी भक्ति में लीन हो जाय । भगवान्
हमें मसार-सागर में अभय प्रदान करने वाले हैं और शरण देने वाले हैं अर्थात्
(शरणम्—प्राणम्, अज्ञानापहताना तदूरक्षास्थानम्, तत्र परमार्थतो निर्माणम्, तद्दाति
इति शरणद) अज्ञान-विमूढ व्यक्तियों की एकमात्र रक्षा के स्थान निर्माण को देने
वाले हैं, जिसको प्राप्त कर आत्मा सिद्ध-पद में अपने प्रदेश में स्थित भी अन्य
सिद्ध-प्रदेशों में अलक्षित-रूप से लीन हो जाता है । जिन भगवान् की भक्ति से

शरण देने वाले हैं चक्षुदण्ड—लोगों को ज्ञान चक्षु देने वाले हैं धम्मदण्ड—
 उनको श्रुत और चारित्र रूप धर्म देने वाले हैं मग्गदण्ड—और अज्ञान रूपी
 अन्धकार से मुक्ति मार्ग दिखाने वाले हैं धम्मदेमण्ड—धर्मोपदेशक हैं धम्मवरचाउ-
 रतचक्रवट्टिणा—श्रेष्ठ धर्म के एकमात्र चक्रवर्ती हैं अप्पडिहय—अप्रतिहत वर—श्रेष्ठ
 नाण—ज्ञान दसण—दर्शन धरेण—धारण करने वाले हैं जिणेण—राग और द्वेष को
 जीतने वाले हैं जाणएण—छद्मस्थ ज्ञान चतुष्टय को जानने वाले हैं बुद्धेण—बुद्ध हैं
 अर्थात् जीव आदि पदार्थों को जानने वाले हैं मोहएण—औरों को बोध कराने
 वाले हैं मोक्केण—ग्राह्य और आभ्यन्तर परिग्रह से मुक्त हैं भोयएण—अन्य जीवों
 को इस परिग्रह से मुक्त कराने वाले हैं तिन्नेण—ससार-रूपी मागर को पार करने
 वाले हैं तारयेण—और उपदेश के द्वारा औरों को इससे पार कराने वाले हैं
 सिव—सर्वथा कल्याण-रूप अयल—नित्य स्थिर अरुय—शारीरिक और मानसिक
 रोग और व्यथाओं से रहित अणत—अन्त रहित अक्खय—कभी भी नाश न होने
 वाले अञ्जावाह—पीडा अर्थात् सब प्रकार के दुःखों से रहित अपुनरावत्तय—
 सासारिक जन्म मरण के चक्र से रहित सिद्धिगति—सिद्ध गति नामधेय—नाम वाले
 ठाण—स्थान को सपत्तेण—प्राप्त हुए उन्होंने अणुत्तरोववाइयदसाण—अनुत्तरोप-
 पातिकदशा के तच्चस्म—तृतीय वर्गस्म—वर्ग का अय—यह अट्टे—अर्थ पणत्ते—
 प्रतिपादन किया है सूत्र ६—छठा सूत्र समाप्त हुआ अणुत्तरोववाइयदसातो—अनुत्तरो-
 पपातिकदशा समतातो—समाप्त हुई अणुत्तरोववाइयदसा णाम—अनुत्तरोपपातिक-
 दशा नाम का सूत्र—सूत्र रूप नवममग—नौवा अङ्ग समत्त—समाप्त हुआ ।

मूलार्थ—हे जम्बू ! इस प्रकार धर्म प्रवर्तक, चार तीर्थ स्थापन करने वाले,
 स्वयं बुद्ध, लोकनाथ, लोको को प्रकाशित और प्रदीप्त करने वाले, अभय प्रदान
 करने वाले, शरण देने वाले, ज्ञान-चक्षु प्रदान करने वाले, मुक्ति का मार्ग
 दिखाने वाले, धर्म देने वाले, धर्मोपदेशक, धर्मवर चतुरन्त चक्रवर्ती, अनभिभूत
 श्रेष्ठ ज्ञान और दर्शन वाले, राग द्वेष के जीतने वाले, ज्ञापक, बुद्ध, बाधक, मुक्त,
 मोचक, स्वयं समार-मागर से तैरने वाले और दूसरों को तगाने वाले, अन्याय
 रूप, नित्य स्थिर, अन्त रहित, विनाश-रहित, शारीरिक और मानसिक आधि-
 ज्याधि-रहित, पुन पुन सासारिक जन्म मरण से रहित सिद्ध-गति नामक स्थान
 को प्राप्त हुए श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अनुत्तरोपपातिकदशा के

तृतीय वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है । छठा सूत्र ममाप्त हुआ । अनुचरोपपातिकदशा समाप्त हुई । अनुचरोपपातिकदशा सूत्र नामक नवमग्रह ममाप्त हुआ ।

टीका—यह सूत्र उपमहाग्रह-रूप है । इससे मय से पहले हमें यह शिक्षा मिलती है कि प्रत्येक शिष्य को पूर्ण-रूप से गुरु-भक्त होना चाहिए और गुरु-भक्ति करते हुए गुरु के सद्गुणों को अवश्य प्रकट करना चाहिए । जैसे इस सूत्र में श्री सुधर्मा स्वामी ने, उपसहार करते हुए, श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के सद्गुणों को जनता पर प्रकट किया है । वे अपने शिष्य चम्बू से कहते हैं कि हे चम्बू ! इस सूत्र को उन भगवान् ने प्रतिपादन किया है जो आदिकर हैं अर्थात् (आदौ—प्राथम्येन श्रुतधर्माचारादि ग्रन्थात्मक करोति तदर्थप्रणायमत्वे प्रणयतीत्येवशीलस्तेनादिकरेण) श्रुत-धर्म-सम्बन्धी शास्त्रों के प्रणेता हैं, तीर्थङ्कर हैं अर्थात् (तरन्ति येन ससार-सागरमिति तीर्थम्—प्रवचनम्, तदन्यतिरेकादिह मह—तीर्थम्, तस्य करण-शीलत्वात्तीर्थकरस्तेन) जिसके द्वारा लोग ससार रूपी सागर से पार हो जाते हैं उसको तीर्थ कहते हैं । तीर्थ मह-रूपी चार हैं । उनके करने वाले महापुरष ने ही इस सूत्र के अर्थ का प्रकाश किया है । इसी ऋम से श्री सुधर्मा स्वामी श्री भगवान् के 'नमोऽस्तु ण' में प्रदर्शित सब गुणों का दिग्दर्शन यहाँ करते हैं । उन कोई व्यक्ति सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो जाता है उम समय वह अनन्त और अनुपम गुणों का धारण करने वाला हो जाता है । उसके गुणों के अनुकरण करने वाला भी एक दिन उसी रूप में परिणत हो सकता है । अतः प्रत्येक व्यक्ति को उनका अनुकरण जहाँ तक हो अवश्य करना चाहिए । यही विशेषतः कारण है कि सुधर्मा स्वामी ने लोगों की हित बुद्धि से उन गुणों का यहाँ दिग्दर्शन कराया है, जिससे लोग भगवान् के गुणों में अनुराग रखते हुए उनकी भक्ति में लीन हो जाय । भगवान् हमें ससार-सागर में अभय प्रदान करने वाले हैं और शरण देने वाले हैं अर्थात् (शरणम्—प्राणम्, अज्ञानोपहताना तद्रक्षास्थानम्, तच्च परमार्थतो निर्माणम्, तददाति इति शरणम्) अज्ञान-विमूढ व्यक्तियों की एकमात्र रक्षा के स्थान निर्माण को देने वाले हैं, जिसको प्राप्त कर आत्मा सिद्ध-पद में अपने प्रदेश में स्थित भी अन्य सिद्ध-प्रदेशों में अलक्षित-रूप में लीन हो जाता है । जिन भगवान् की भक्ति से

इतना सर्वोत्तम लाभ होता है । उनकी भक्ति कोई क्यों न कर अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति उनकी भक्ति में लीन होकर उस अलभ्य पद की प्राप्ति करनी चाहिए । भगवान् को अप्रतिहत ज्ञान दर्शन धर बताया गया है उसका अभिप्राय यह है । (अप्रतिहते—कटकृत्यपर्वतादिभिरस्त्रलितेऽविसवादके धाक्षायिकत्वाद्, वरे—प्रधाने ज्ञान-दर्शने केवललक्षणे धारयतीति—अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनधरस्तेन) अर्थात् किसी प्रकार से भी स्त्रलित न होने वाले सर्वोत्तम सम्यग् ज्ञान अर्थात् केवल ज्ञान और केवल दर्शन धारण करने वाले सर्वज्ञ और सर्वदर्शी भगवान् की जब शुद्ध चित्त से भक्ति की जायगी तो आत्मा अवश्य ही निर्वाण-पद प्राप्त कर तन्मय हो जायगा । ध्यान रहे कि इस पद की प्राप्ति के लिये सम्यग् ज्ञान-दर्शन और सम्यक् चारित्र के सेवन की अत्यन्त आवश्यकता है । जब हम किसी व्यक्ति की भक्ति करते हैं तो हमारा ध्येय सदैव उसी के समान बनने का होना चाहिए । तभी हम उसमें सफल हो सकते हैं । पहले हम कह चुके हैं कि कर्म ही सासारिक बन्ध और मोक्ष के कारण हैं । उनका क्षय करना मुमुक्षु का पहला ध्येय होना चाहिए । जब तक एक भी कर्म अवशिष्ट रहता है तब तक कोई भी निर्वाण रूप अलौकिक पद की प्राप्ति नहीं कर सकता है । उनका क्षय या तो उपभोग से होता है या ज्ञानाग्नि के द्वारा । यदि भोग के ऊपर ही उनको छोड़ दिया जाय तो उनका नाश कभी नहीं हो सकता । क्योंकि उनके उपभोग के साथ २ नये कर्म सञ्चित होते जाते हैं, जो उसको फिर उसी बन्धन में डाल देते हैं । अतः ज्ञानाग्नि से शीघ्र उनका क्षय करना चाहिए । वह ज्ञान साधु आचरण के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है । इसी लिये कहा भी है 'ज्ञानक्रियाभ्या मोक्ष' अर्थात् ज्ञान और क्रिया के सहयोग से ही मोक्ष होता है । सिद्ध यह हुआ कि भगवद्-भक्ति के साथ २ सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र का आसेवन भी आवश्यक है ।

इस प्रकार ज्ञान और चारित्र की सहायता से धन्य अनगार आदि और उनके समान अन्य महापुरुष अनुत्तर विमानों में देव-रूप से उत्पन्न होते हैं और जो इन विमानों में उत्पन्न होते हैं वे अवश्य ही मोक्ष-गामी होते हैं । अत एव प्रस्तुत सूत्र में उन्हीं व्यक्तियों का वर्णन किया गया है, जो उक्त विमानों में जाकर उत्पन्न हुए हैं ।

हमने जिस प्रति से यह हिन्दी अनुवाद किया है, वह 'आगमोदय-समिति' की ओर से प्रकाशित हुई है । कुछ एक हस्त-लिखित प्रतियों में पाठभेद भी मिलते हैं । हमने जिस प्रति का अनुसरण किया है, उसमें पाठ सक्षिप्त कर दिया गया है । क्योंकि उक्त ममिति ने पहले अङ्गों अर्थात् 'भगवतीसूत्र' और 'ज्ञाताधर्म-कथाङ्ग सूत्र' का पाठ यद्वा दोहराना उचित नहीं समझा, नाहीं हमें ठीक प्रतीत हुआ । अत उदाहरण-स्वरूप स्त्यावत्यापुत्र आदि के नाम का उल्लेख ही स्थान-स्थान पर कर दिया गया है । इसके अतिरिक्त भी पाठ-भेद हमें हस्त लिखित प्रतियों में मिलते हैं, जैसे इस सूत्र की समाप्ति पर ही कुछ प्रतियों में निम्न-लिखित पाठ है—

“अणुत्तरोपवाइयदसाण एगोसुयकरधो तिणिण वग्गा तिसु चेर दिवसेसु उदि सिञ्जति । तत्थ पढमे उग्गे दस उद्देसगा, वीए वग्गे तेरम उद्देसगा, ततीयवग्गे दम उद्देसगा । सेस जहा नायाधम्मकहा तहा णेयव्वा । अणुत्तरोपवाइयदसाण नवम अग ममत्त ॥”

इस पाठ में प्रस्तुत सूत्र की सख्या का विषय वर्णन किया है । पाठ मिलकुल स्पष्ट है । इस पाठ को समझ पाठ भी कहा जाता है ।

इस सूत्र से अन्तिम शिक्षा हमें यह भी मिलती है कि उक्त महर्षियों ने महाघोर तप करते हुए भी एकादशाङ्ग सूत्रों का अध्ययन किया । अत प्रत्येक व्यक्ति को योग्यतापूर्वक शास्त्राध्ययन में प्रयत्न-शील होना चाहिए, जिमसे वह अनुक्रम से निर्माण-पद की प्राप्ति कर सके ।

अन्त में हम अपने धर्म-प्रिय पाठकों से विदा लेते हुए अभयदेव सूत्र के ही शब्दों को नीचे उद्धृत किये देते हैं —

शब्दा केचन नार्थतोऽत्र त्रिणिता केचित्तु पर्यायतः,
सूत्रार्थानुगते समुह्य भणतो यज्जातमाग-पदम् ।
'भाष्ये ह्यत्र' तकज्जिनेश्वरउचोभाषायिधौ कोविदै,
सशोध्य त्रिहितान्तरैर्विनमतोपेक्षा यतो न क्षमा ॥

श्रीरस्तु ।

अनुत्तरोपपातिरुसूत्र की तपोगुण प्रकाशिका
हिन्दी भाषा टीका समाप्त ।

नमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स

अनुत्तरोपपातिकदशासूत्रम्

शब्दार्थ-कोष

अ=और	३०	अज्झयणे=अध्ययन	२४
अगस्स=अङ्ग या	३ ^२ , ८ ^२	अट्टु=आठ	६१
अगाइ=अङ्गों या	१६, ४६, ८६	अट्टुओ=आठ-आठ	१२
अत=अन्त, देहान्मान, मृत्यु	२७	अट्टुएह=आठ के (विषय में)	२०
अतिप, ते=समीप, पास, नजदीक	३६, ४६, ७०, ७३, ८६	अट्टुमस्स=आठवें का	३
अत्तेवामी=शिष्य	१३ ^२	अट्टि-चम्म छिरत्ताप=हड्डी, चमड़ा और नसों से	५१, ६४
अउ गट्टिया=आम की गुठली	६१	अट्टी=अस्थि, हड्डी	६४
अउ पेसिया=आम की फौंक	६३	अट्टे=अर्थ ३ ^२ , ११, २०, २४ ^२ , २७ ^२ , ३२ ^२ , ३४, ७३, ८१, ६५	
अवाडग पेसिया=आम्रातरु-अम्वाडे की फौंक	६३	अडमाणे=धूमता हुआ (भिक्षा के लिए)	४५
अरुलुसे=जोष आदि क्लुपों में रहित	४६	अट्टा=शुद्धि अर्थात् ऐश्वर्य वाली	३५, ८६
अरुखय=कमी नाश न होने वाला	६५	अणत=अत-रहित, कभी नाश न होने वाला	६५
अरुखसुत्त-माला=रुद्राक्ष की माला	६७	अणगार=अनगार को	८, १३, ७३
अगतिथय सगलिया=अगस्तिक वृक्ष की फली	५६	अणगारस्स=अनगार—माया-ममता को छोडकर घर का त्याग करने वाले	
अगग हत्थेहिं=हाथ के पन्जों से	६७	साधु का	५१, ६४, ७२, ८०
अच्छीण=आँखों का	६४	अणगारे=अनगार ८, १३ ^२ , ३६, ४२ ^२ , ४५ ^२ , ४६ ^२ , ४६ ^२ , ६७, ७० ^२ , ७३, ८६ ^२	
अज्ज=आर्य	३	अणज्जोवयणे=राग-द्वेष से रहित, विषयों में अनासक्त	४६
अज्झयणस्स=अध्ययन का	११, ३४, ८१		
अज्झयणा=अध्ययन	८ ^२ , ११, २४, २६, ३२, ३४		

अणायचिल्=अनाचाम्ल, आयचिल नामन	अभय-दण्ड=अभय देने वाले	१४
तप विशेष से रहित	अभयस्म=अभय कुमार का	२०
अणिन्प्रित्तेण=अनित्तिप्र (निरतर),	अभये=अभय कुमार	८
विना किसी बाधा से	अभिग्गह=प्रतिष्ठा, आहार आदि ग्रहण	
अणुज्झिय धम्मिय=उपयोगी, रखने योग्य	करने की मर्यादा बाँधना	८६
अणुत्तरोवनाहयदसाण = अनुत्तरोपपा	अमुच्छिते=विना किसी लालसा के,	
तिरुदशा नाम वाले नये अह्नशास्त्र का	अनासक्त होकर केवल शरीर-धारण	
३, ८ ^३ , ११, २०, २४ ^३ , २६, २७,	के लिए	४६
३० ^३ , ३४, १५	अम्मय=माता को	३६
अण्ण खभ सय सन्नविट्ठ=अनेर सैरुडों	अय=यह ३, २०, २४, २७, ३०,	
स्तम्भो (स्तम्भों) से युक्त	५१ ^३ , ५३ ^३ , ८१ ^३ , ६५	
अण्णया=अन्यदा, किसी समय	अयल=अचल, स्थिर	६५
४६, ७२,	अरय=आधि व्याधि से रहित	६५
८०, ६०	अल=मग प्रहार के, पूर्णरूप से	३५
अदीणे=दीनता से रहित	अलत्तग गुलिया=महदी की गुटिका	६१
अन्नया=देखो अण्णया	अवरखति=चाहते हैं	४२, ४५
अन्ने=अन्न	अवि=भी	८६
अपराजिते=अपराजित विमान में	अविमणे=विना दु खित चित्त के	४६
२०, २७	अविसादी=विना विपाद् (खेत्) के	४६
अपरिततजोगी=अविश्रान्त अथान् निर	अजागह=पीडा से रहित	६५
न्तर समाधि-युक्त	असम्मट्ट=साफ हाथों से	४०
अपरिभूआ=अतिरक्षित, नीचा न देखने	अमि=है	७३
वाली	अह=में	३६, ७२, ८०
अपुण्णरात्तय=जार २ जम-मरण के	अह=अथ पक्षांतर या प्रारम्भ सूचक	
बाधन म रहित	अन्यय	४५
अप्पडिहय घर नाण दसण धरेण=अप्र-	अहा पज्जत्त=जितना कुछ भी, आवश्यक	
तिहत (विन्न बाधा से रहित श्रेष्ठ ज्ञान	कतानुसार मिला हुआ	४६
और दर्शन धारण करने वाले	अहापडिक्ख=यथायोग्य, उचित	७२
६५	अहा सुह=सुखपूर्वक	४०
अप्पाणं=अपने आत्मा की	अहिज्जति=अध्ययन करता है, पढ़ता है	
४२, ४३, ४६, ८६	१६, ४६, ८६	८६
अप्पाणेषु=आत्मा से	अहीण=अध्ययन की, मीखी	३५
४६	अहीण=पूरा	३५, ८६
अभणुण्णाते=आज्ञा होने पर, आज्ञा	आरगरेण=धर्म के प्रवर्तक	६४
मिल जाने पर		
४२, ४३, ४६		
अभरिषते=आध्यात्मिक विचार ?		
८०		
अब्भुगत मुम्मिन्ते=बड़ और ऊँचे		
३७		
अब्भुज्जताए=उद्यम वाली		
४५		
अभओ=अभयकुमार		
२०		

आइहाण=आदि के, पहले के	२० ^३	तपस्वियों में	७२ ^३
आउकम्पण=आयु के क्षय होने के कारण	१३	इच्छामि=मैं चाहता हूँ	४२
जाणुपुत्रीप=अनुक्रम में, नम्बर वार	२०, २७, ६१	इति=समाप्ति-बोधक अव्यय, परिचयात्मक अव्यय	५३ ^६ , ५५ ^४
जापुच्छइ, ति=पृथक्ता है, पृथक्ती है	३६ ^३ , ४५	इभवर रुद्रगाण=श्रेष्ठ श्रेष्ठियों की कन्याओं का	
जापुच्छण=पृथक्ता	८०	इममि=इनमें	७२
जापुच्छण=धर्म-जिज्ञासा, धर्म के विषय में पृथक्ता	१६	इमामि=इसमें	७२ ^३
जापुच्छति=देखो आपुच्छइ		इमे=ये	१३, ३२, ८०
जापुच्छामि=पृथक्ता हूँ	३६	इमेण=इसमें	८०
जायविल='आयविल' नामक एव तप, जिसमें रुखा भात या अन्य कोई प्रासुक धान्य केवल एक ही बार खाया जाता है	४२, ४५	इसिदासे=ऋषिदाम कुमार	३२
जायविल परिग्रहिणण='आयविल' नामक तप की रीति से ग्रहण किया हुआ	४२	ईर्या-समिते=ईर्या ममिति वाला, यत्ना-चारपूर्वक चलने वाला	३६, ८६
जायवे=धूप में	५६	उक्रमेण=उत्क्रम से, उलटे क्रम से, नीचे से उपर	२०
जायार भइण=तप साधन के उपकरण	१३, ८०	उन्खेउओ=आलेप, न कहे हुए वाक्यों का पीछे के वाक्यों से आक्षेप करना	८६
जायाहियण=आदक्षिणा	७३	उग्गह=अवग्रह, सम्मान, पूजा आदि	७२
जायाहियण पयाहियण=आदक्षिणा और प्रदक्षिणा	७३	उच्च०=(उच्च-मध्यम-नीच) उच्च, मध्यम और नीच कुलों से	४५
जारणच्चुण=आरण-ग्यारहवाँ देवलोक और अच्युत-बारहवाँ देवलोक	१३	उच्चद्वयणते=ऊँचे गले का पात्र निगेष	६१
जाहरति=भोजन करता है	७२	उज्जाणातो=उद्यान से, बगीचे से	४६
जाहार=भोजन	४६	उज्जाणे=उद्यान, बगीचा	३४, ७२
जाहारेति=भोजन करता है, खाता है	४६, ८६, २४ ^३ , ३२ ^३	उज्जिण्य धम्मिय=निरूपयोगी, फेंक देने योग्य	४२
जाहिते=रूखा गया है	२४ ^३ , ३२ ^३	उट्ट पाद=ऊँट का पैर	५५
इ=इति, परिचय या समाप्ति-सूचक अव्यय	६४	उट्टाण=आँठों की	६१
इगाल-सगडिया=कोयलो की गाडी	६७	उड्डु=ऊँचे	१३ ^३ , ८० ^३
इदभूति पामोक्काण=इन्द्रभूति आदि		उएहे=गरमी में	५१, ५३
		उदर=पेट	५५
		उदर-भायण=उदर-भाजन, पेटरूपी पात्र	६४
		उदर भायणण=उदर-भाजन में	६७
		उदर भायणस्त=उदर-भाजन की	५५

उत्पि=उपर	१२, ३८, ७२, ८६	ओयरति=उतरते हैं	१३
उभङ घटामुहे=घडे के मुख के समान		ओरालेण=उदार—प्रधान (तप से)	
पिनराल मुख वाला	६७	कइ=नितने	८६, ८०, ८६
उम्मुन वालभाव=वालरूपन से अति-		कन जघा=कइ नाम पत्नी विशेष की	८
क्रान्त, जिसने बचपन छोड़ दिया है	३७	जहा	५३
उयरति=उतरते हैं	८०	कपण घातिओ (वित्र)=रूपन-घातिकर	
उर-कडग देस भापण=उत्तस्थल (छाती)		रोग वाले व्यक्ति के समान	६७
रूपी चटाई के निभागों से	६७	कट्ट कोलरप=लन्डी का कोलम्ब—पात्र	
उर-कडयस्स=छाती की	५६	विशेष	७५
उवसोभेमाणे=शोभायमान होता हुआ	६७	कट्ट पाउया=लन्डी की खडाऊँ	५१
उवयालि=उपजालि कुमार	८	कडि-कडाहेण=रटि (कमर) रूपी कटाह से	६७
उववज्जिहिंति=उत्पन्न होगा	८०	कडि पत्तस्स=रटि-पत्र की, कमर की	५५
उववणणे, न्ने=उत्पन्न हुआ	१३ ^३ , ८० ^३ , ६१	कण्ण=मान	६४
उवयायो=उपपात, उत्पत्ति	२०	कण्णाय=मानों की	६५
उवसोभेमाणे=शोभायमान होता हुआ	७०	कण्हो=टूटण वामुदेव	३६
उवागच्छति=आता है	४५, ७३ ^३	कतरे=कौनसा	७०
उवागते=आया	७०	कदाति=रुमी	७२
उ-उड गणयणोसे=जिसकी आँखें मीतर		कदावली=कान के भूपणों की पङ्क्ति	५५
धँस गई थी	६७	कप्पति=उचित है, योग्य है	४२
ऊरस्स=ऊरओ न	५३	कप्प=रूप-सौधर्म आदि देवों के नाम	
ऊरु=गोना ऊरु	५३	वाले द्वीप और समुद्र	१३
एणमि=इनने विषय में	६४	कय लन्रण=शुभ लक्षण वाला	७३
एकारस=ग्यारह	१६, ४६, ८६	कयाइ, ति=कदाचित्, कमी	४६, ८०, ६०
एग त्रिचसेण=एक ही दिन में	३८	करन गीवा=करवे (मिश्री के छोटे से	
एय=इस	७३	पात्र) की मीरा अर्थात् गला	६१
एयारुवे=इस प्रकार का	७१ ^३ , ७३ ^३ , ५५,	करेंति=करते हैं	१३
एय=इस प्रकार	३, ८ ^३ , १२ ^३ , १३ ^३ , ००,	करेति=करता है	३६, ४५, ७३ ^३ , ६१
	२४ ^३ , ३४, ४२, ५३, ६४, ७२ ^३ ,	करेह=नरो	४०
	७३, ८० ^३ , ८६, ६१, ६४	कल सगलिया=कलाय-धाय विशेष की	
एय=ही, निश्चयार्थ बोधन अव्यय	३६	फली	५१
एयामेव=इसी प्रकार	५१ ^३ , ५३, ५५, ५६,	कलानो=कलाएँ	२७, ३५
	५६ ^३ , ६१ ^३ , ६३, ६४ ^३	कलाय सगलिया=कलाय की फली	५६
एसणाए=एपणा-समिति—उपयोगपूर्वक		कहिं=कहाँ	१३ ^३ , ८० ^३
आहार आदि की गवेषणा करने से	४५		

कहेति=रहता है	६०		१३, ८० ६०
काउस्सग=नायोस्सर्ग, धर्म-यान	१३	खलु=निश्चय मे ८ ^२ , १०, १३, २४, २७ ^२ ,	
कारुदी=कारुन्दी नाम की नगरी	७२	३०, ३४, ७० ^२ , ८० ^२ , ८६, ६४	
कारुजघा=कौवे की जोंघ, कारु-जङ्घा		सीर धाती=दूध पिलाने वाली धाय	३५
नामक श्लोपधि विशेष	४३	गगा तरग भूपख=गङ्गा की तरङ्गों के	
कागदी=कारुन्दी नाम की नगरी	३४	समान हुए	६७
कागदीए=कारुन्दी नगरी म	३५, ४६, ८६	गच्छति=जाता है	६७
कागदीओ=कारुन्दी नगरी से	४६	गच्छिंहिति=जायगा	१३ ८०
कायदी=कारुन्दी नगरी	४५	गण्डिज माला=गिती की माला	६७
कायदी श्मरीए=कारुन्दी नगरी म	४५	गण्डेज माणेहिं=गिने जाते हुए	६७
कारेति=घनवाती है	३७	गते=गया	१३
कारेह्य छल्लिया=करेले का छिलना	६४	गामासुगाम=एक गोंय से दूसरे गोंय	७०
१ काल=काल, समय	१३, ८०	गिलाति=खेत् मानता है, दु खित होता है	६७
२ काल=मृत्यु (से)	१३, ८०	गीयाए=मीया की, गर्त की	६१
काल गते=मृत्यु को प्राप्त होने पर	१३	गुण रयण=गुण-रत्न, तप	१६
काल गय=मृत्यु को प्राप्त हुआ	१३	गुणमिलए, ते=गुणशिल नामक चैत्य	
काल मासे=मृत्यु के समय	१३, ८०	या उद्यान १०, २७, ७१, ६०	
कालि पौरा=कालि—घनस्पति त्रिशोफ का		गूढदत्ते=गूढदन्त कुमार	२४
पर (मन्धि-स्थान)	५३	गेण्हति=ग्रहण करते हैं	१३
कालेण=काल से, समय से (म) ३, १०, २७,		गेण्हवेति=ग्रहण कराती है	३८
३४, ३६, ७१ ^२ , ७२, ८६ ^२ , ६०		गेवेज विमाण पत्यडे=प्रैवेयक देवता के	
काहिति=श्रत करेगा	२७	निजास-स्थान के प्रान्त भाग से १३, ८०	
किञ्चा=करके	१३, ८०	गोतम पुच्छा=गोतम का पूछना	६०
कुडिया-गीया=रमण्डलु का गला	६१	गोतम सामी=गणधर गोतम स्वामी, श्री	
कुमारै=कुमार	८, २७	महानीर स्वामी के मुत्प शिष्य	४५
के=हीनसा ३, ११, २४, २७, ३०, ३४		गोतमा=हे गोतम !	८०
केण्ड्रेण=त्रिस कारण	७०	गोतमे=गोतम स्वामी	४६, ८०
केयलिय=नितने	१३, ८०	गोयमा=हे गोतम !	१३ ^३ , ८०
कोणितो=कोणिक राजा	३६	गोयमे=गोतम स्वामी	१३
खदओ=खन्दक सन्यासी	६७, ८०	गोलापली=एक प्रकार के गोल पत्थरो	
खदग वत्त वया=जो कुछ खन्दक		की परिष्क	५५
सन्यासी के विषय में कहा गया है	१६	खददसण्ह=चौदह का	७०
खदतो=खन्दक म यासी	४६, ८६	खदिम=चन्द्र विमान	१३, ८०
खदयस्स=खन्दक सन्यासी का (वर्णन)		खदिमा=चन्द्रिना कुमार	३२

चक्रवृत्त-दण्ड=ज्ञान-चक्र प्रदान करने वाले	६४	जति=देखो जड़	
चम्म चि उरत्ताप=ममदा और शिराओं के कारण	६४	जधा=जैमे	१३
चरेमाणे=चलते हुए, विहार करते हुए	७०	जमाली=जमालि कुमार	३६ ^३
चलतेहि=चलते हुए, हिलते हुए	६७	जम्म=जन्म	२७
चिंतणा=धर्म चिंता	१६	जम्म जीविय फले=जन्म और जीवन का फल	७३
चिंता=चिन्ता	८०	जयते=जयत विमान म	२०, २७
चिट्ठति=स्थित है, रहता है, रहती है	४६, ४१, ४३, ६४, ६७ ^३ , ७२	जयण घडण जोग चरिते=जया (प्राप्त योगों में उद्यम), घटन (अप्राप्त योगों की प्राप्ति का उद्यम) और योग (मन आदि इंद्रियों का समय) से युक्त चरित्र वाला	४६
चित्त कटरे=गों के चरणों के कुण्ड के नीचे का हिस्सा	५६	जरग ओराणहा=सूखी जूती	५१
चेतिण, ते=चैत्य, उद्यान, बागीचा	१०, १७, ७१, ६०	जरग पाद=बूढ़े बैल का पैर (खुर)	५५
चेहणाण=चेहणा देवी के	२०	जहा=जैसा, जैसे	१० ^३ , २०, २७ ^३ , ३५, ३६ ^६ , ४५, ४६, ४६, ६३, ६४ ^३ , ६७, ८० ^३ , ८६ ^३ , ६०
चेव (चउइव)=ठीक ही	१६ ^३ , ४२ ^३ , ५१, ६४, ७० ^६ , ७३, ८६ ^३	जहा खामप, ते=यथा-नामक, जैसी, जैसा	५१ ^३ , ५३ ^३ , ५५ ^३ , ६१ ^३ , ६७
चोदसण्ह=चौदह का	७२ ^३	जा=जैसी	१६
छट्ट छट्टेण=पष्ठ पष्ठ तप से, जिस तप में उपनाम ६ भक्त या दो दिन के बाज खोला जाता है	४२, ४३	जाणणण=(छद्मस्थ ज्ञान-चतुष्टय को) जानने वाले	६५
छट्टस्सवि=उठे (भक्त) पर भी	४२	जाणूण=जानुओं का	५३
छत्त-चामरातो=छत्र और चामरों से	३६	जाणेत्ता=जानकर	१३, ३७
छमासा=छ महीने	६१	१ जाते=बालक	३५
छिन्ना=तोड़ी हुई	५१, ५६	२ जाते=हो गया	३६, ५६
जइ, ति=यदि	३, ८, ११, २४, २६, ३०, ३४, ४५, ८६	जामेव=जिसी	७३
ज=जिस	४२ ^३ , ८६	जालि=जालि अनगर को	१३
जघाण=जहाओं का	५३	जालि=जालि कुमार या अनगर	८, २७
जयु=जम्बू स्वामी को	८	जालिस्स=जालि की	१३, २७
जवू=जम्बू स्वामी, सुधर्मा स्वामी के मुख्य शिष्य	३, ८, १२, २४, ३०, ३४, ८०, ८६, ६४	जालीकुमारो=जालिकुमार	१०
जणणीओ=माताएँ	६१	जालीवि=जालिकुमार भी	१२
जणनय विहार=देश में विहार	४६, ८६	जाव=यावत्, पहले वही हुई बात को फिर से न दुहराकर इस शब्द से	

उसका आक्षेप सर्वत्र किया गया है ३ ^३ , ८, ११ ^३ , १०, १३ ^३ , २०, २४, २६, २७, ३०, ३४, ३५ ^३ , ३७ ^३ , ३८ ^३ , ३९ ^३ , ४०, ४५ ^३ , ४६ ^३ , ४९, ५३, ५४, ६४, ६७, ७० ^३ , ८० ^३ , ८१, ८६ ^३ , ९०	
जावज्जीवाए=जीवन पर्यन्त	४०, ४३
जाहे=जव	३६
जिणेण=राग-द्वेष को सर्वथा जीतने वाले 'जित' भगवान् ने	६५
जियसत्तु=जितशत्रु राजा को	३६
जियसत्तु=जितशत्रु नाम का राजा	३५, ३६ ^३
जिम्भाए=जिह्वा की, जीभ की	६१
जीवेण=जीव की शक्ति से	६७ ^३
जीहा=जिह्वा जीभ	६४
जेणेव=जिसी ओर	४५, ७२ ^३ , ७३ ^३
जोइ-जमाणेहिं=दिखाई देती हुई	६७
ठाणु=स्थान को	६५
ठिती=स्थिति	१३ ^३ , ८०, ६१
ढेणालिया जघा=ढेणिक पत्नी की जन्मा	५३
ढणालिया पोरा=ढेणिक पत्नी के सन्धि- स्थान	५३
ण=वाग्ज्यालङ्कार के लिए अव्यय है, जिमरा इम ग्रन्थ में हमने 'नु' से संस्कृत अनुवाद किया है ३ ^३ , ८ ^३ , ११ ^३ , १३, २४, २६, ३२ ^३ , ३५, ३५, ३७, ३६, ४० ^३ , ४५ ^३ , ४६ ^३ , ४९ ^३ , ५१ ^३ , ६४, ६७ ^३ , ७० ^३ , ७३ ^३ , ८० ^३ , ८६ ^३ , ९० ^३	
ण=नहीं, निषेधार्थक अव्यय	४०, ४५ ^३ , ६४
णगरी=नगरी	३४, ४५
णगरीए=नगरी में	८६
णगरीतो=नगरी से	४६, ४६
णगरे=नगर	१२, २७, ७१, ९०
णमसति=नमस्कार करता है	५०, ७२, ७३ ^३
णवर=निषेधा-बोधक अव्यय	६४

णणत्त=नानात्र, माता-पिता आदि न वर्णन	२०
णाम=नाम वाली	३४
णाम=नाम वाला	३५, ८६ ^३
णिन्वतो=गृहस्थ छोड़कर धीनित होगया	१६
णिन्वमणु=निष्क्रमण, दीक्षित होना	३६, ८६
णिग्गओ=निस्त्रा	१० ^३
णिग्गता=निस्त्री	६०
णिग्गते=निस्त्रा	८६
णिग्गतो=निस्त्रा	६०
णिग्गया=निकली	७१
णिग्मस=मास-रहित	६४
णिग्मसा=मास-रहित	५१
णो=नहीं, निषेधाधक अव्यय	४० ^३ , ५१, ५३, ६४
तए=इसके अनन्तर	८०
तओ=तीन	८
त=उस	४२ ^३ , ८०, ८६
तजहा=जैसे	८, २४, ३०, ३५
तच्चस्स=तीसरे	३० ^३ , ३४, ६५
तत्ते=इसके अनन्तर	८, १३, ३६ ^३ , ४० ^३ , ४५ ^३ , ५६ ^३ , ४९ ^३ , ७० ^३ , ७३, ८६ ^३ , ९०
ततो=इसके अनन्तर	८०
तत्थ=वहाँ	३५
तरणुए=कोमल	६४
तरणुग-एलालुए=कोमल आलू	६४
तरणुग लाउए=कोमल तुम्बा	६४
तरुणिते=छोटी, कोमल	५३
तरुणिया=छोटी, कोमल	५१, ५६, ६३
तय=तेरा	७३
तय तेय सिरीए=तप और तेज की लक्ष्मी से	६७
तय रूप लाउए=तप के कारण उत्पन्न हुई सुन्दरता	५१

तपमा=तप म	४६, ४६, ८६	तेत्तीस=तेतीम	८०, ६१
तवेण=तप मे	६७	तेरम=तेरह	२६
तपो कर्म=तप-कर्म	१६	तेरमण्हवि=तेरहो की	२७
तपो कर्मण=तप-कर्म म	४०, ४३	तेरसमे=तेरहजों	२४
तरस=उमरा	३६, ८०, ६०	तेरसवि=तेरह ही	२७
तहा=उसी तरह १०, २७, ३६ ^३ , ६७, ८६ ^३		तेसि=उनके	३७
तहा रूपाण=तथा रूप, शास्त्रा में वर्णन		तो=तो	४४ ^३
निये हुए गुणों में युक्त साधुओं का	४६	त्ति=इति	८०
तहेव=उसा प्रकार १०, १३, २०, ४४, ७०,	८० ^३ , ८६, ६०	यात्रायापुत्रस्म=स्थावत्या-पुत्र की, स्था	
ताप=उम	४४	वत्या गायापत्री का पुत्र, जिम्मे एक	
ताओ=उम	१३	सहस्र मनुष्या के साथ दीक्षा ली थी	३६, ८६
नामेव=उसी	७३	यावद्यापुत्तो=स्थावत्या-पुत्र	३६
तारणण=दूसरों को समार मागर से पार		थासयात्रली=दर्पणा (आरसिया) की	
करने वाले	६४	पक्ति	४४
नालियट पत्ते=ताड के पत्तों का पट्टा	४६	थेरा=स्थविर भगवान्	१३, ८०
त्ति=इति, समाप्ति या परिचय बोधक		थेराण=स्थविर भगवन्तों का	४६
अव्यय	८, १३, ४१ ^४ , ४३ ^३	थेरेहिं=म्यथिरा के (से)	१०, ८०
तिकट्टु=इस प्रकार करके	७३	दस=दश	८, ११, ३० ^३ , ३४
तिन्नुत्तो=तीन बार	७३ ^३	दसमे=दशजों, दशम	३०
तिगिण=तीन	८	दसमो=दशम, दशजों	६१
तिणह=तीन का	२०	दाओ=विशह में कन्या-पत्न से आने वाला	
तिव्यगरेण=चार तीर्थों की स्थापना		दहेज	१०, ३८, ८६
करने वाले	६१	दारप=वालन	३४, ८६
तिन्नेण=ससार सागर से पार हुए	६४	दारय=वालन नो	३४
तीसे=उम	३४, ८६	दिजा=दी हुई	४१, ४६
तु-मेण=आप में	४०	दिवस=दिन	४० ^३ , ८६ ^३
तुम=तुम	७३	दिस=दिशा को	७३
ते=व	१३, ३२	दीहदते=दीर्घदन्त कुमार	८, २०
तेणण=तेज से	६७	दीहसेणे=दीर्घसेन कुमार	२४, २७
तेण=उस ३ ^३ , १० ^३ , २७ ^३ , ३४ ^३ , ३६ ^३ ,		दुनिज्जमाणे=बिहार करते हुए	
४६, ७१ ^४ , ७० ^३ , ८६ ^३ , ६०		दुमसेणे=दुमसेन कुमार	२४
तेणट्टेण=इस कारण	७२	दुमे=दुम कुमार	२४
तेणेप=उमी ओर	४४, ७०, ७३ ^३	दुरुहति=आरोहण करते हैं, चढ़ते हैं	८०

दुरूहति=आरोहण करता है, चढता है	१२	धारिणी सु-जा=धारिणी देवी के पुत्र	२०
दूर=दूर	१३, ८०	नदादेवी=नन्दादेवी नाम वाली रानी	२०
देवम्स=देव की	१३, ८०	नगरी=नगरी	७२ ^३
देवत्ताप=देव रूप से	१३, ८०	नगरीण=नगरी में	३५
देव लोगाओ=देवलोक से	१३, ८०	नगरे=नगर	२०
देवाणुपियाण=देवों के प्रिय (आप)		नव=नी	६१
का	१३, ३६	नवणह=नों की	६१ ^३
देवाणुपिया=देवों के प्रिय (तुम)	४२, ७० ^३	नवणहचि=नों की	६१
देवी=राज महिषी, पटरानी	१२, २७	नयमस्स=नों में	३, ८ ^३
देवे=देव	६१	नय मास परियातो=नों महीने की समय-	
दोच्चस्स=दूमरे	२४ ^३ , २६, २७, ३०	वृत्ति	८८
दोणह=दो का	२०	नवमे=नोंवाँ	३०
दोघ्नि=दो का	२७ ^४ , ६१ ^६	नयमो=नोंवाँ	६१
धणस्स=धन्य कुमार या अनगर का	८०	नयर=निरोपता-सूचक अव्यय	१२, २०, २७, ३६ ^३
१ धणो,घ्ने=धन्य कुमार या अनगर	३०, ४० ^३ , ४५ ^३ , ४६ ^३ , ४६ ^३ , ६७, ७० ^३ , ७३, ६१	नाम=नाम वाली	७०
२ धणो=धन्य है	७३	नासाप=नासिका की, नाक की	६३
धरणो,घ्नो=धन्य अनगर	८६ ^३	निक्कमण=निष्कमण, गृहत्याग	६१
धन्न=धन्य कुमार नाम का	३५, ३७	निग्गाओ=निकला	७०
धन्नस्स=धन्य कुमार या अनगर का	३६, ५१ ^३ , ५३ ^३ , ५५ ^४ , ५६ ^३ , ६१ ^४ , ६३, ६४ ^३ , ७०	निग्गता=निकली	७०
धन्ने, धन्नो=देवो धरणो, धरणो		निग्गतो=निकला	३६ ^३
धम्म=धर्म		निग्गया=निकली	३, ३६
धम्म-कहा=धर्म-कथा	७०, ६०	निसम्म=ध्यानपूर्वक सुत्तर	७०
धम्म जागरिय=धर्म-जागरण	८०, ६०	पच्च=पाँच	२०, २७
धम्म दण्ण=श्रुत और चारित्र रूप धर्म देने वाले	६४	पच्चणह=पाँच का	२० ^३
धम्म देसण्ण=धर्म का उपदेश करने वाले	६४	पच्च धाति परिनिस्संसे=पाँच धाइयों की रक्षा में रखा हुआ	८६
धम्म वर-चाउरत चक्कवट्टिणा=उत्तम धर्मरूपी चार गति और चार अवयव युक्त ससार के चत्तरती	६४, ६५	पच्च धाति परिग्गहित=पाँच धाइयों का ग्रहण किया हुआ	३५
धारिणी=धारिणी नाम की श्रेणिक राजा की रानी	१२	पगाति-भइप=प्रकृति से भद्र, सौम्य स्वभाव वाला	१३
		पग्गहियाप=ग्रहण की हुई, स्वीकार की हुई	४५
		पज्जुवासति=सेवा करता है	३

पडिगण=चला गया	७३	की	७०
पडिगणो=चला गया	६०	पत्रतिते=प्रजित हुआ	३६, ४०, ८६
पडिगणा=चली गई	६०	पत्रयामि=प्रजित होता हूँ, पीछा प्रहण करता हूँ	३६
पडिगया=चली गई	७०	पत्राय वदण मले=जिमरा कमलरूपी मुख सुरमा गया था	६७
पडिगाहेति=प्रहण करता है	४६	पाउणिता=पालन कर	१०, १३
पडिग्गाहितते=प्रहण करने के लिए	१०	पाउभूते=प्रकट हुआ	७३
पडिणिक्खमति=बाहर निकलता है	४६, ४६	पासुलि कटण्हि=पमलियों की पक्ति से	६७
पडिदमेति=दिखाता है	४६	पासुलिय रुडाण=पार्श्वभाग की अस्थियों (हड्डियों) के कटकों की	४४
पडिग्ध=प्रतिग्ध, निम्न, देरी	४२	पाण=पानी	४५ ^३
पढम छट्ट वखमण पारणगमि=पहले पत्र त्रत (वेले) के पारण म	४५	पाणावली=पाण—एक प्रकार के बतनों की पक्ति	४५
पढमस्स=पहले ८ ^३ , ११ ^३ , २०, २४, ३४, ८१	४५	पाणि=हाथ	३८
पढमाण=पहली	४५	पात जघोरणा=पैर, जङ्घा और ऊरुओं से	६७
पढमे=पहले (अध्ययन) म	२०	पात्राण=पैरो की	५१, ७०
पण्णम भूतेण=सर्प के समान	४६	पामातिय तारिगा=प्रात काल का तारा	६४
पण्ण(न)त्ता=प्रतिपादन क्रिये हैं ८ ^३ , ११, १३, २६, ३०, ८१		पायगुलियाण=पैरों की अँगुलियों की	५१
पण्ण(त्र)त्ते=प्रतिपादन क्रिया है, कहा है ३, ११ ^३ , २०, २४ ^३ , २७ ^३ , ३० ^३ , ३४, ८१, ६५		पायगुलियानो=पैरा की अँगुलियों	५१
पण्णा(घा)यति=पहचाने जाते हैं ५१, ६१ ^३		पाय चारेण=पैरल	३६
पत्त चीउराइ=पात्र और वस्त्रों की	१३	पाया=पैर	५१
पयययाए=अधिग यत्र वाली	४४	पारणयमि=पारण करने पर, पारण के समय	४०
परिनिव्वाण उत्तिय=परिनिर्वाण प्रत्ययिग, किमी की मृत्यु के उपलक्ष्य में किया जाने वाला	१३	पासायवडि(डें)सण, ते=श्रेष्ठ—मज्जेम महल में १२, ३७, ३८, ७२, ८६	
परियातो=सयम-वृत्ति या साधु वृत्ति का पालन	२७, ६०	पि=भी	४२ ^३
परिवमइ=रहती है (थी)	३५	पिट्ठि-करडग सधीहि=पृष्ठ-करण्डग (पीठ के उन्नत प्रदेशों) की मन्धियों से	६७
परिवसति=रहता है	८६	पिट्ठि करडयाण=पीठ की हड्डियों के उन्नत प्रदेशों की	५५
परिग्मा=परिपद, श्रोत्र गण ३, ३६, ७१, ७२ ^३ , ६०		पिट्ठि मयस्सिपण=पीठ के साथ मिले हुए	६७
पलास पत्ते=पलाश (टारु) का पत्ता ५६ ६१		पिट्ठि माइया=पृष्ठिमारुग कुमार	३२
पचइते=प्रजित हुआ, साधु-वृत्ति धारण			

अनुत्तरोपपाति मन्त्रशास्त्रम्

पिना=पिता	२७	पीला द्विष्टे=पीला क...	
पिया=पिता	६१	युद्धेण=युद्ध, ...	
पुन्र उति=पृथता है	२०	योद्ध वे=यत्नन क...	
पुट्टिले=पृथिमायी कुमार	३०	योरी-योरीह=क...	
पुत्ते=पुत्र	३५, ५६	योहण=... के...	
पुन्नसेणे=पुरयसेन कुमार	२४	भते=हे भवन् !	
पुरिम्नसेणे=पुरपसेन कुमार	५	२४, २० = ३, २०	
पु उरत्तापरत्तफाल समयमि=मध्य रात्रि के समय में	६०	५०, ५, ६	
पु उरत्तापरत्तफाले=मध्य रात्रि में	५०	भगव=भगवन्	
पु उरत्तुपु पीण=म से	७०	भगवता=भवन्	
पेढालपुत्ते=पेढालपुत्र कुमार	३०	भगवता=भगवन् ने	
पेहण=पेहण कुमार	३२	भगवतो=भवन् का	
पोरिमीण=पोरुपी, प्रहर, दिन या रात के चौथे भाग में	४५	भगवया=भगवान न	
फुट्टेतेहि=उडे जोर से उजते हुए (मृदन्न आदि वाद्यो के नाद से युक्त)	३५	भजणयमहे=वन आदि मृदन्न क...	
उभयारी=उभयचारी	३६, ५६	भत्त=भक्त	
उत्ती(त्ति?)स=उत्तीम	१३, ३७, ५६	भद्=भद्रा मार्यवाग्नि को	
उत्तीसाण=उत्तीम	३५	भद्दा=भद्रा नाम वाली	
उत्तीसाओ=उत्तीस	३५, ६१	भद्दाण=भद्रा मार्यवाग्नि का	
उत्तीसग डिष्टे=उत्तीमक नामक वाजे का छेद	६४	भद्दाओ=भद्रा नाम वाली	
उहवे=उहत से	४२	भद्रति=भद्रा जाता है	
उहिया=वाहर	४६, ५६	भवण=भवन	
उह=बहुत	६०	भविता=होकर	
उारस=उारह	२०	भाणिय=न, ...	
उालत्तण=उालत्तण	२७	भाणेमाणे=भायना करते हु...	४०
उात्तरि=उहत्तर	३५	भास=भाषा, बोल	
उाहाण=मुजाओं की	४६	भास-रामि पत्ति...	
उाहाया सगलिया=उाहाय नाम वाले वृत्त नियोग की फनी	५६	हनी हुई	
उाहाहि=मुजाओं से	६७	भासिस्सामि=कहूँगा	
उिलमिब=उिल के समान	४६, ७२, ५६	भुक्खेण=भूख से	
		भोग समत्प, ...	३, ५, ११, ३४, ...

मस सोणियत्ताप=मास और रुधिर के कारण	५१, ६४	मुडावली=खम्भों की पक्ति	५५
मग्ग दण्ण=मुक्ति-मार्ग दिखाने वाले	६४	मुडे=मुण्डित	४०, ८६
मज्जे=बीच में	३७	मुग्ग सगलिया=मूंग की फली	५१, ५७
मम=मेरा	१३	मुच्छिद्या=मूर्च्छित	३६
मयालि=मयालि कुमार	८	मूला-छल्लिया=मूली का छिल्ला	६४
मयूर पोर=मोर के पर्य (सन्धि-स्थान)	५३	मेहो='ज्ञाता धर्मन्थाङ्गसूत्र' में वर्णित मेघ कुमार	१० ^३
महता=श्रेष्ठ भारी (समारोह से)	३६	मोक्केण=स्वयं मुक्त हुए	६५
मह-उले=महावल कुमार, जिसका वर्णन 'भगवती सूत्र' में किया गया है	३५, ३६	मोयण्ण=दूमरों को ससार-सागर से मुक्ति दिलाने वाले	६५
महा णिज्जरतराण=उडे कर्मों की निर्जरा करने वाला	७० ^३	य=और	८ ^१ , ३२ ^३ , ४२, ८०
महा कुक्कर णारण=अत्यन्त कुक्कर तप करने वाला	७२ ^३	रामपुत्ते=रामपुत्र कुमार	
महादुमसेणमाती=महादुमसेन आदि	०७	रायगिहे=राजगृह नाम का नगर	३, १२, २०, २७, ७१, ६०, ६१ ^३
महादुमसेणे=महादुमसेन कुमार	०४	राया=राजा	१०, २०, २७, ३५, ७१, ७०, ७३, ६० ^३
महाविदेहे=महाविदेह (क्षेत्र) में	१३, ८०, ६१ ^३	रिद्ध(द्धि?)तिथमिय समिद्धे, द्धा=वन धान्य से युक्त, भयरहित और सब प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त	१२, ३४
महावीर=धर्म के प्रवर्तक श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को	४०, ७२ ७३ ^३	लट्ठदत्ते=लट्ठदत्त कुमार	८, २०
महावीरस्स=श्री महावीर स्वामी का	४६, ७३, ८६	लभति=प्राप्त करता है	४५ ^३ , ४६
महावीरे=श्री महावीर स्वामी	३६, ४६, ७१	लाउय फले=तुम्बे का फल	६१
महावीरेण=श्री महावीर से	४३, ६४	लुण्ण=रुद्ध	६४
महासीहसेणे=महासिंहसेन कुमार	२४	लोग-नाहेण=तीनों लोकों के स्वामी	६४
महासेणे=महासेन कुमार	२४	लोग पज्जोयगरेण=लोक उद्योतकर (प्रकाशित करने वाले)	६४
मा=नदी, निषेधार्थक अव्यय	४२	लोग प्पदीवेण=लोकों में दीपक के समान प्रकाश करने वाले	६४
माणुस्सण्ण=मनुष्य सम्बन्धी	७३	घदति=वन्दना करता है	४२, ७२, ७३
मानुलुग पेसिया=मानुलुङ्ग-बीजपूरक की फोंक	६३	चग्गस्स=वर्ग का	८, ११, ००, २४ ^३ २७ ^३ , ३० ^३ , ६५
माया,ता=माता	२०, २७	चग्गा	८
मान्म=एक मास		घट्टयावली=लाल आदि के बने हुए बच्चों के खिलौनों की पक्ति	५५
मान्म सगलिया=माप-उडद की फली	५१, ५६		
मासिया=एक मास की	८०		
मिलायमाणी=मुरझाती हुई	५१		

घड पत्ते=उड का पत्ता	५६, ६१
वत्त रया=वक्तव्य, विषय	७७
वयासी=कहने लगा, बोला	३, ८, १३, ४२, ७२
वा=विकल्पार्थ-बोधक अन्वय	५१ ^६ , ५५ ^४
वाणियग्गामे=वाणिज्य ग्राम नगर में	
वारिसेणे=वारिसेन हैं	
वारिसेणे=वारिसेन कुमार	८
वालुक छल्लिया=चिर्मटी की छाल	६४
वावि (वाऽअत्रि)=भी	३७
वासा=वर्ष	६०, ६१
वासद्, तिं=वर्ष तक	१२, २०
वासे=ध्वेय में	१३, ५०
विडरु=विपुलगिरि पर्वत	५०
विगत तडि-शरालेण=नदी के तट के समान भयङ्कर प्रान्त भागों से	६७
विजय, ये=विजय विमान में	२० ^२ , २७
विजय विमाणे=विजय नामक विमान में	१३
विपुल=विपुलगिरि नामक पर्वत	१२
विमाणे=विमान में	५० ^२ , ६१
वियण पत्ते=गौस आदि का पत्ता	५६
विहरति=विचरण करता है	१२, ३८, ४३, ४६, ४६, ७२, ८६ ^४
विहरामि=विचरण करता हूँ	७२
विहरित्तते=विशर करने के लिए	४२
वीतिप्रत्तिता=व्यतिरात कर, अतिरमण कर, उसको छोड़कर उससे आगे	१३, ५०
वुच्चति=बढ़ा जाता है	७२ ^१
वुत्त पडिबुत्तया=अक्ति प्रत्युक्ति से	३६
वुत्ते=बढ़ा गया है	३२
वेजयते=वैजयत विमान म	२०, २७
वयमाणीय=गौपती हुई	६७
वेहल्ल वेहायसा=वेहल्ल कुमार और विहायस कुमार	२०

वेहल्लस्स=वेहल्लकुमार का	६१
वेहल्ले=वेहल्ल कुमार	८, ३२
वेहायसे=विहायस कुमार	८१
सचापति=समर्थ होती है	३६
सजमे=सयम में, साधु-वृत्ति में	७२
सजमेण=सयम से	४६, ४६, ८६ ^३
सपत्तेण=मोक्ष को प्राप्त हुए	३ ^३ , ८ ^३ , ११ ^३ , २०, २४ ^३ , २६, २७ ^३ , ३२ ^३ , ३४, ८१, ६५
सलेहणा=सलेखना, शारीरिक व मानसिक तप-द्वारा कपादि का नाश करना, अनशन व्रत	८०, ६१
ससट्टु=भोजन आदि से लिप्त (हाथों से दिया हुआ)	४२
सच्चैव=वही	२७
सत्तमाय=स्वाध्याय	
सत्त=मात	२०
सत्तयाहिं=सार्थवाहिनी को	३६
सत्तयाही=सार्थवाहिनी, व्यापार में निपुण स्त्री	३५, ३७, ८६ ^६
सार्द्धि=साथ	१२, ५०
समणण=समय मे (में)	३, १२, २७, ३४, ३६, ७१ ^३ , ८६, ६०
समणण=श्रमण भगवान्	४२, ७२, ७३ ^३
समण माहण अतिहि कियण घणीमगा=श्रमण, माहन (आपक), अतिथि, कृपण और बनीपक (याचक विशेष) ४२	
समण साहस्सीण=हजारों मुनियों में (श्रमण सहस्रों में)	
समणस्स=श्रमण भगवान् का	४६, ७२, ७३, ८६
समणे=श्रमण भगवान्	४६, ७१
समणेण=श्रमण भगवान् ने	३, ८ ^३ , ११ ^३ , २०, २४ ^३ , २६, २७, ३२ ^३ , ३४ ^३ , ४२,

समाणी=होने पर	२६, ८०, ६४	का भाग, सयम वृत्ति	१०
समाणे=होने पर	५१, ५६	सामन्न परियातो=सयम-वृत्ति	२०
समि सगलिया=शमी वृत्त की पत्नी	१२ ^१ , ४६	सामली करीह्ये=शाल्मली वृत्त की कोपल	५३
समुद्राण=घरों के समूह से प्राप्त भिन्ना	५६	सामादयमादयाइ=सामायिक आदि	४६
समोमदे=पधारै, विराजमान हुए	१०, ३६, ७१, ६०	सामी=श्री श्रमण भगवान् महाजीर स्वामी	१०, ६०
समोसरण=पधारना, तीर्थङ्कर का प्रधारना		साहन्सीण=सहस्रां में—(सहस्रा का)	७० ^१
	३, ८६	सि-भ्रूणा=सिद्धि	६१
सय=अपने आप	३६	सिजिभाहिति=सिद्ध होगा	१३, ८०, ६१
सय सनुडेण=अपने आप बोध प्राप्त करने वाले	६४	सिद्धिल-बडाली (विच)=ढीली लगाम के समान	६७
सरण दपण=शरण देने वाले	६४	सिण्डालण=सिस्तालक—सेपालक नामक फल त्रिगोप	६४
सरिस=समान	६१	सिद्धि गति नामधेय=सिद्धि गति नाम वाले	६५
सरीर-घनओ=शरीर का वर्णन	७२	सिलेस गुलिया=श्रेष्ठ की गुटिका	६१
सल्लति करिह्ये=शाल्य वृत्त की कोपल	५३	सिव=व्याणरूप	६५
सत्रुसिद्धे=समार्थसिद्ध विमान में	२० ^१ , २७, ८० ^१ , ६१ ^१	सीस=शिर	६४
सवत्थ=सजत्र, सज के विषय में	६४	सीस उडीण=शिररूपी घट (घडे) से	६७
सव्जो=सज	७०	सीसस्स=शिर की	६४
सव्जोदुप=सज वस्तुओं में हरा भरा रहने वाला	३५	सीहसेणे=सिहसेन कुमार	२४
सहसववणे=सहस्राग्रन नाम वाला एक बगीचा	३४, ७०	सीहै=सिंह कुमार	२४
सहसउणगतो=सहस्राग्रन उद्यान से	४६	सीहो=सिंह, शेर	१२, २७
सा=वह	३५	सुकयत्थे=सुवृत्तार्थ	७३
सापण=साकेत पुर में	६१	सुक=सूखा हुआ	५५, ६४
साग पत्ते=शाक के पत्ते	६१	सुक छगणिया=सूखा हुआ गोबर, गोहा	५६
सागरोपमाइ=सागरोपम, दश क्रोडानोडी पल्योपम प्रमाण का, काल का एक विभाग जिमने द्वारा नारकी देवता की आयु मापी जाती है	१३, ८०, ६१	सुक छल्ली=सूखी हुई छाल	५१
साम करीह्ये=प्रियङ्गु वृत्त की कोपल	५३	सुक जलोया=सूखी हुई जोंक	
सामन्न परियाग=साधु का पयाय, साधु		सुकदिण=सूखी हुई मशक	५५
		सुक सण्य समाणाहिं=सूखे हुए सप के समान	६७
		सुका=सूखी हुई, सूखे हुए	५१ ^१ , ५६
		सुकातो=सूखी हुई	५१
		सुकुण=सूखे हुए	

सुणम्पत्त गमेण=सुनक्षत्र के समान	६१	सेन्=शेष (पर्याप्त), बाकी	२०
सुणम्पत्तस्स=सुनक्षत्र के	६०	सेसा=शेष	२०, २७
सुणम्पत्ते=सुनक्षत्र कुमार	२२, ८६	सेसाण=शेष का	६१
सुपुण्णे=अच्छे पुण्य वाला	७३	सेसाण्णि=शेष का भी	२०
सुमिणे=स्वप्न में	१०, २७	सेसाचि=शेष भी	६१
सुरूपे=सुन्दर, अच्छे रूप वाला	३५, ८६	सोच्चा=सुनकर	७२, ७३
सुलद्धे=अच्छी तरह प्राप्त कर लिया है	७३	सोणियत्ताप,त्ते=रुधिर के कारण	५१
सुहम्मस्स=सुधर्म नाम वाले श्री महावीर			५३ ^३ , ५५
भ्वामी के पाँचवें गणधर और जम्बू		सोलस=सोलह	१२, २०, २७
भ्वामी के गुरु का	३	भोहम्मिस्ताण=सौधर्म और ईशान नामक	
सुहम्मै=सुधर्मा भ्वामी	८	पहला और दूसरा देवलोक	७३
सुहुय० (सुहुय ह्यासण इ०)=अच्छी		हत्तु फले=हकुव—वनस्पति विगेष का	
तरह से जली हुई अग्नि के समान	४८		फल ६१
सुद्धदत्ते=शुद्धदन्त कुमार	२४	हट्ट तुट्ट=प्रसन्न और सत्पुत्र	४३, ७३
१से=१३, उसके ८ १३, ४०, ४५, ४६,		हयुपाए=चिपुन—ठोड़ी की	६१
४१ ^२ , ५१ ^२ , ५३ ^३ , ५५ ^४ , ५६, ६१ ^५ ,		हत्थगुलियाण=हाथों की अँगुलियों की	५६
६३, ६४ ^२ , ६७, ७२, ८० ^३ , ८६, ९०		हत्थाण=हाथों की	५६
२से=अथ, प्रारम्भ-बोधन अवयव	७२	हत्थिणपुरे=हस्तिनापुर में	६१
सेणिय=श्रेणिक राजा १०, २०, २७, ७१,		हल्ले=हल्ल कुमार	२४
	७२, ७३, ९०	ह्यासणे (इ०)=अग्नि के समान	६७
सेणियो=श्रेणिक राजा	१०, २७	होति=होते हैं	२४
सेणिते=श्रेणिक राजा	७१	होत्था=था, थी	३४, ३५ ^३ , ५१, ७२, ८६
सेणिया=द्वे श्रेणिक	७२ ^३		



Printed by

K R Jain, at the Manohar Electric Press,

Said Mitha Bazar Lahore



